गुरु गोबिंद सिंह जी
(1666–1708, गुरगद्दी 1675–1708)

यहाँ यह कहना असंगत नहीं होगा कि सारे मानव इतिहास में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जो गुरु गोबिंद सिंह जी से अधिक उत्साहित कर सकने वाले व्यक्तित्व का मालिक हो। दसवें गुरु नानक जी का कमाल था कि उन्होंने अपने सिखों के मनों और हृदयों में सन्त भावना और निडरता दोनों की रूह फूंक दी, न्याय और धर्म को फिर से बहाल करने, संसार में दबे–कुचले लोगों को ऊपर उठाने के लिए और जोर–जबर के विरुद्ध लड़ने के लिए मनुष्यता को सहारा देकर उत्साहित और प्रेरित किया। कहा जाता है कि गुरु तेग बहादुर जी की शहादत के बाद दसवें गुरु जी ने ऐलान किया कि वह एक ऐसे पंथ की स्थापना करेंगे जो निरंकुश शासकों के आगे डर कर झुकेगा नहीं, बल्कि जीवन के हरेक क्षेत्र में जुल्म करने वालों को ललकारेगा, मनुष्य जाति के लिए न्याय, समानता और शान्ति की बहाली की खातिर। गुरु जी ने यह भी प्रतिज्ञा की कि वह गोबिंद सिंह तभी कहलायेंगे, जब उनके खालसा पंथ का एक–एक सिंह निडरता और सफलता से रणक्षेत्र में शत्रु की सवा–सवा लाख फौज का सामना करेगा। यह प्रतिज्ञा ठीक साबित हुई जब चमकौर साहिब में साहिबज़ादा अजीत सिंह (गुरु जी का सबसे बड़ा 18 वर्षीय सुपुत्र) ने मुगल फौजों और उनके साथी पहाड़ी राजाओं की फौजों का डटकर सामना किया।

"हम इह काज जगत मो आये।
धर्म हेत गुरदेव पठाये।
जहां तहां तुम धरम बिबारो।
दुष्ट दोखीअनि पकरि पछारो।
यही काज धरा हम जनमं।
समझ लेहु साधू सभ मनमं।
धरम चलावन संत उबारन।
दुष्ट सभन को मूल उपारन।"

(गुरु गोबिंद सिंह जी –चौपाई, बचित्र नाटक)

गुरु तेग बहादुर जी की शहादत अपने आप में, मुगल राज्य के जुल्म का सामना करने के लिए, एक नये समाज की स्थापना की खातिर एक प्रतीक बनकर उभरी। जब एक बदी सिर उठाती है तो एक धर्मात्मा पुरुष इसके सम्मुख दब जाए या फिर हथियार उठाकर इससे लड़े और उसे तबाह करे ? जवान गुरु गोबिंद राय जी ने दूसरा मार्ग चुना, धर्म की उन्नति के लिए। उन्होंने इस तरह अपने सिखों को आदेश दिया कि दुष्टों और उनकी दुष्टताओं को मिटाने के लिए जब सारे उपाय असफल हो जाएँ तो तलवार का प्रयोग किया जाए। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरु जी ने हुक्मनामे जारी किये कि वे उन्हें भिन्न–भिन्न प्रकार के शस्त्र भेंट किया करें। गुरु जी का आदेश बड़े जोश और श्रद्धा से माना गया। उन्होंने स्वयं ऐसी वर्दी पहन ली और शस्त्र धारण कर लिए और सिखों को प्रेरणा दी कि वे तीरअंदाजी और बन्दूक चलाने का अभ्यास करें। उन्होंने मशक्कत वाले उन खेलों को खलने के लिए उत्साहित किया जिनसे मांसपेसियाँ मजबूत हों और शारीरिक शक्ति बढ़े। बहुत सारे स्वाभाविक सैनिक प्रतिभा वाले श्रद्धालू जिनके बड़े–बुजुर्गों ने गुरु जी के पिता जी और दादा जी की सेवा की थी, गुरु जी के पास आये। उस समय गुरु जी के प्रमुख साथी थे– उनकी बुआ बीबी वीरो जी (गुरु हर गोबिंद साहिब की सुपुत्री) के पाँच सुपुत्र– सांगो शाह, जीत मल, गोपाल चंद, गंगाराम और मोहरी चंद, गुरु जी के चाचा जी के दो सुपुत्र–गुलाब राय और शामदास, गुरु जी के मामा कृपाल चंद जी, गुरु जी के बचपन के मित्र भाई दया राम जी और गुरु जी का एक प्यारा मसन्द भाई नंद चंद।

गुरु जी ने अपने सिखों को उपदेश दिया कि वे आशावादी और नियमबद्ध जीवन व्यतीत करें। गुरु जी स्वयं अपने पिता की तरह खूब तड़के उठते और उपासना करते। उन्हें 'आसा दी वार' सुनकर विशेष खुशी होती थी। दिन चढ़े वे अपने सिखों को धर्म उपदेश देते और फिर सैनिक अभ्यास करते। दोपहर के

बाद वह अपने सिखों को मिलते, शिकार खेलने जाते, या घुड़दौड़ करवाते और शाम को रहिरास के पाठ का दीवान सजाते।

गुरु जी के सुन्दर डील–डौल की सभी पुरुष और स्त्रियाँ खूब प्रशंसा करते। लाहौर से एक सिख भाई भिखिया गुरु जी के दर्शन करने के लिए आया। सुन्दर जवान गुरु जी को देखकर उसने अपनी सुपुत्री जीतो का गुरु जी के संग विवाह करने की विनती की। विनती स्वीकार हो गई और कुड़माई(मंगनी) की रस्म के अवसर पर आनंदपुर में बड़ी खुशियाँ मनाई गईं। विवाह के लिए 23 आषाढ़ सम्वत् 1734 (सन् 1677 ई.) तारीख तय हुई। गुरु जी ने सब तरफ इस अवसर के लिए हुक्म भेजे और लाहौर सहित अलग–अलग स्थानों से अनेकों सिख उत्साह में भरकर पहुँचे। आनंदपुर के निकट एक स्थान चुना गया, जिसका नाम 'गुरु की लाहौर' रखा गया, जहाँ विवाह की रस्म पूरी की गई।[1]

दुनीचंद और राजा रतन राय का आगमन :

अथाह प्रेम और श्रद्धा से भरे हृदयों के साथ लोगों की भीड़ पर भीड़ गुरु जी के दर्शन करने के लिए आने लगी। कुछ श्रद्धालू काबुल, कंधार, गज़नी, बलख और बुखारा से आए। अपने पातशाह को श्रद्धांजलि भेंट करने आए ये लोग अपने साथ अमूल्य उपहार– गलीचे, दरियाँ, शालें और अन्य कीमती वस्तुएँ अर्पण करने के लिए लाए। एक श्रद्धालू दुनीचंद 1681 में आनंदपुर आया और गुरु जी को एक ऊनी चंदोआ भेंट कर गया। सोने और चांदी से कढ़ा और मोतियों से जड़ा यह बहुत ही शानदार चंदोआ था। कहा जाता है कि यह मुगल बादशाह के चंदोए से भी अधिक शानदार था।

गुरु तेग बहादुर साहिब की मेहर से आसाम के राजा राम के घर में एक पुत्र, रतन चंद ने जन्म लिया। राजा पुत्र को गुरु जी के पास ले जाना चाहता था, पर मृत्यु हो जाने के कारण वह आनंदपुर नहीं जा सका। उसने अपनी रानी को अन्तिम समय में यह हिदायत दी थी कि शहज़ादे का पालन–पोषण एक श्रद्धालू सिख के तौर पर किया जाए। रानी ने अपने पति की इच्छा की पूरी तरह पालना की और बड़े हो रहे शहज़ादे को गुरु साहिबान के जीवन और उपदेशों के बारे में पूरी जानकारी दी। जब रतन राय बारह वर्ष का हुआ, उसके मन में गुरु जी के दर्शन करने की इच्छा जागी। सो, अपनी माता और अपने कई मंत्रियों के साथ वह आनंदपुर आया। गुरु जी को भेंट करने के लिए वह सोने के साज–सामान के साथ पाँच घोड़े, एक बहुत छोटा हाथी, एक शस्त्र जिसमें से पाँच शस्त्र बन जाते थे, एक पिस्तौल, एक तलवार, एक नेज़ा, एक खंजर और एक गदा लाया।

राजा रतन राय का बहुत अधिक आदर–सम्मान किया गया। उसने गुरु जी को योग्य उपहार भेंट किए और सिख धर्म में प्रवेश करवाने के लिए विनती की। उसने भेंट में लाई गई वस्तुओं के बारे में बताया। हाथी को हुक्म देकर उससे गुरु जी के जूतो को साफ करवाया और उन्हें उचित स्थान पर रखवाया। फिर, आदेश मिलने पर हाथी ने एक चांवर लेकर उसे गुरु जी के ऊपर झुलाया। राजा ने गुरु जी से विनती की कि हाथी को वह सदैव अपने पास ही रखें।

शहज़ादा रतन राय अपने साथियों के साथ पाँच महीने आनंदपुर में रहा और इस दौरान कीर्तन का आनन्द उठाया और गुरु जी के उपदेश सुनकर उसने अपने अन्दर एक सुधार अनुभव किया। आनंदपुर से लौटते समय गुरु जी कुछ रास्ते तक उसके साथ आए और फिर उन्होंने विदा ली। गुरु जी ने उन्हें चलते समय तोहफे दिए। इन स्थूल तोहफों के साथ–साथ गुरु जी ने रतन राय को 'नाम' का रत्न भी बख्शा जो जीवन का परम तोहफा है।

"नामु अमोलकु रतनु है पूरे सतिगुर पासि।
सतिगुर सेवै लगिया कढ़ि रतनु देवै परगासि।
धन्न वडभागी वडभागीआ जो आइ मिले गुर पासि।"
(श्री राग महल्ला 4, पृष्ठ 40)

रणजीत नगाड़ा :

गुरु जी की फौज दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी और अब वह एक बड़ा नगाड़ा बनाने का विचार कर रहे थे, जो फौज को उत्साहित करने के लिए आवश्यक समझा जाता था और जिसके बगैर गुरु जी अपना फौजी सामान अधूरा समझते थे। नगाड़ा बनवाने का काम गुरु जी ने अपने दीवान नंद चंद को सौंपा। उस समय केवल एक स्वतंत्र राजा ही ऐसा नगाड़ा अपने राज्य की सीमाओं के अन्दर इस्तेमाल कर सकता था। दूसरे राजा के इलाके के अन्दर नगाड़ा बजाना दुश्मनी वाला काम और जंग के लिए खुला आमंत्रण समझा जाता था। नगाड़ा पूरा बन गया तो अरदास करके कड़ाह प्रसाद बांटा गया। इसका नाम 'रणजीत नगाड़ा' रखा गया। जब इसे बजाया गया तो शहर में से स्त्री और पुरुषों की सारी संगतें इसे देखने के लिए आईं और खूब खुशियाँ मनाई गईं।

उसी दिन गुरु जी अपने सिखों के संग शिकार खेलने के लिए गये। जब वह कहिलूर रियासत की राजधानी बिलासपुर के करीब पहुँचे तो नगाड़ा बजाया गया। इसकी गरज सुनकर पहाड़ी लोग डर गये और उन्होंने किसी आने वाले खतरे को अनुभव किया। कहिलूर के राजा भीमचंद ने अपने प्रधान मंत्री की सलाह ली। उसने कहा कि यह नगाड़ा गुरु जी का है जो पूरी तरह योग्य हैं और दूसरी बात यह कि गुरु जी ने बहुत बड़ी फौज रखी हुई है जिससे बहुत लोग डरते हैं, और तीसरी बात – गुरु जी एक महान योद्धा हैं जो कभी–कभी मित्र के तौर पर लाभदायक भी होते हैं। यह सुनकर राजा भीमचंद ने गुरु जी से मिलने की इच्छा प्रकट की और अपने प्रधान मंत्री को गुरु जी के पास भेजा, इस मुलाकात की विनती करने के लिए। गुरु जी ने इसे परवान कर लिया और राजा भीमचंद अपने दरबारियों को साथ लेकर आनंदपुर आया।

राजा भीम चंद और गुरु जी :

राजा भीम चंद का गुरु जी के दरबार में बड़े आदर के साथ स्वागत किया गया। उसने गुरु जी को आसाम के राजा की तरफ से आये तोहफे दिखाने के लिए विनती की। भीम चंद अति सुन्दर काबली चंदोआ देखकर हैरान रह गया। उसे बताया गया कि यह चंदोआ काबुल के एक धर्मात्मा सिख की ओर से भेंट किया गया है। भीम चंद को सारे तोहफे दिखाये गये। बातचीत करते हुए जब बहुत सुन्दर ढंग से सजाया गया हाथी सामने आया तो राजा हक्का–बक्का रह गया और सारे तोहफों, जो उसने देखे, की खूब प्रशंसा करने लगा। अपनी रियासत की और लौटते हुए राजा का मन गुरु जी की पदवी और दौलत को लेकर ईर्ष्या से जल रहा था और उसने इरादा किया कि कम से कम हाथी अवश्य ले लेना है।

अपनी राजधानी वापस पहुँचकर भीम चंद ने अपने मन की बात अपने दरबारियों को बताई। फैसला हुआ कि गुरु जी को एक सन्देश भेजना चाहिए कि गढ़वाल का राजा फतह चंद अपनी बेटी की मंगनी भीम चंद के पुत्र से करने के लिए कुछ लोगों के संग आ रहा है और भीम चंद की इच्छा है कि गुरु जी अपना हाथी इस अवसर के लिए भेज दें, ताकि राजा अपने मेहमानों को अपनी दौलत का दिखावा कर सके। जब गुरु जी को सन्देश मिला तो वे तो मन की बात जानते थे कि यह एक चाल है, हाथी को पूरी तरह अपने कब्जे में कर लेने की। गुरु जी ने भीम चंद को उत्तर भेजा, "जिस राजा ने यह हाथी भेंट किया था, उसने विनती की थी कि मैं यह हाथी कभी भी अपने पास से न जाने दूँ। यह गुरु घर का उसूल है कि ऐसी विनतियों को स्वीकार करके उन पर कायम रहा जाए।" कहा जाता है कि राजा ने तीन बार अपने दूत भेजे जिनमें अन्तिम, जसवाल का राजा केसरी चंद था। पर गुरु जी न माने। सो, भीम चंद नाराज हो गया और उसने बदला लेना चाहा।

अधिकांश संख्या में मसन्द गुरु जी की फौजी तैयारियों के कारण भड़क उठे और उन्होंने गुरु जी की माता जी के पास विनती की कि वे गुरु जी को ऐसी कार्रवाइयों से हटायें ताकि इनके कारण गुरु जी पर कोई कष्ट न आ सके। जब गुरु जी से माता जी ने इस सम्बन्ध में बात की तो गुरु जी ने उत्तर दिया, "प्यारी माता जी, मुझे अकाल पुरुख ने इस संसार में भेजा है। जो उसकी आराधना करेगा, प्रसन्न रहेगा, पर जो बददियानतदारी करेगा और पत्थरों की पूजा करेगा, उसे उसी तरह का यथोचित बदला मिलेगा।

मुझे अकाल पुरुख की ओर से यह आदेश मिला है। अगर आज मैं राजा भीम चंद को हाथी दे दूँ, तो कल को मुझे उसे खिराज देना पड़ेगा।" तब, नंद चंद बातचीत में आ शामिल हुआ और उसने कहा, "माता जी, कभी कोई शेर गीदड़ों से डरा है ? कभी सूरज के चमकते उजाले में किसी ने जुगनू की रोशनी देखी है ? सागर के सामने पानी की एक बूंद का क्या मुकाबला ? गुरु जी एक बहादुर शेर और सूरज की तरह महान हैं। क्या वह भीम चंद से डर जाएंगे ?" गुरु जी ने वार्तालाप समाप्त करते हुए कहा, "प्यारी माता जी, मसन्दों की खराब सलाहें न सुनों। ये दुष्ट सिखों के तोहफे की चोरी खाकर कायर बन गये हैं।"

गुरु जी और उनके सैनिक तीर–अंदाजी का अभ्यास करते रहे ओर शिकार खेलने में भी व्यस्त रहे। गुरसिख लगातार दर्शनों के लिए आते और शस्त्र भेंट करते रहे। जो फौज में भर्ती होने के लिए आते, खुशी से स्वीकार किये जाते और शस्त्र–विद्या की शिक्षा पर लगा दिये जाते। इस तरह गुरु जी ने बहुत सारी फौज इकट्ठा कर ली।

गुरु जी पाउंटा साहिब गये :

इसी दौरान नाहन के राजा मेदनी प्रकाश ने गुरु जी को आने के लिए निमंत्रण दिया। निमंत्रण स्वीकार करके गुरु जी नाहन की ओर चल पड़े। आनंदपुर की रक्षा गुलाब राय और शामदास के सुपुर्द कर दी। राजा गुरु जी को लेने और उनका स्वागत करने के लिए आया और उन्हें अपने महल में ले गया। एक दिन गुरु जी को शिकार खेलने के लिए ले गया और वहाँ शिकायत की कि गढ़वाल का राजा फतह शाह उसके साथ कई बार झगड़ा कर चुका है कि यह जमीन, जहाँ वे खड़े हैं, उसकी है। राजा ने गुरु जी से तजवीज़ की कि अगर इस जगह पर गुरु जी एक किला बनवा लें, तो उसे बड़ी खुशी होगी जिससे दुश्मन से बचाव हो जाएगा। गुरु जी ने वहाँ एक तम्बू लगवाकर दरबार लगाया। उन्होंने किले का नींव–पत्थर रख दिया। राजा मेदनी प्रकाश की फौज की सहायता, कारीगरों के जोश और हिम्मत से किला थोड़े समय में तैयार हो गया। गुरु जी ने इस का नाम पाउंटा रखा और इसमें निवास आरंभ कर दिया। साथ ही, अपनी फौज को बढ़ाना जारी रखा।

राजा फतह शाह गढ़वाल ने यह नतीजा निकाला कि क्योंकि गुरु जी ने उसके इलाके के करीब रहना शुरू कर दिया था, सो यह समझदारी की बात होगी कि उनके साथ अच्छे सम्बन्ध रखे जाएँ। इस तरह उसने गुरु जी से मिलने का फैसला किया। उसके आगमन पर गुरु जी के दरबार में उसकी बड़ी अच्छी आवभगत हुई। इस अवसर पर गुरु जी ने अपने मामा कृपाल चंद जी को राजा फतह शाह के पास भेजा, यह सलाह देने के लिए कि अच्छा होगा अगर राजा फतह शाह और नाहन का राजा, दोनों आपस में अच्छे सम्बन्ध कायम कर लें। राजा फतह शाह एकदम मान गया। गुरु जी ने तब नाहन के राजा को बुलाया। उन्होंने खुले दरबार में दोनों को मिला दिया, दोनों ने एक दूसरे को छाती से लगाया और इस तरह गुरु जी ने दोनों राजाओं की मित्रता करवा दी।

इसी समय, एक पहाड़िया खबर लेकर आया कि एक भयानक शेर, साथ वाले इलाके में पशुओं को मारे जा रहा था। उसने गुरु जी के सम्मुख विनती की कि इस जंगली पशु से इस इलाके को बचाएँ। वह गुरु जी और दोनों राजाओं को अन्य लोगों के साथ वहाँ ले गया, जहाँ पर उसने शेर के होने की सूचना दी थी। शिकारियों के पैरों की आहट पाकर शेर अपने पिछले पैरों के बल बैठ गया और पीछा करने वालों को देखने लगा। गुरु जी ने आवाज दी कि है कोई जो तलवार और ढाल से शेर का मुकाबला करे ? पर कोई भी आगे नहीं बढ़ा। तब गुरु जी ने अपनी तलवार और ढाल पकड़कर शेर को ललकारा। शेर गरजकर उठा और गुरु जी पर झपटा, जिसे गुरु जी ने अपनी ढाल पर रोका और अपनी तलवार से शेर के दो टुकड़े कर दिए। दोनों राजा और शिकारी साथी बड़े हैरान हुए और गुरु जी की ताकत और बहादुरी को देखकर खुश भी हुए।

रामराय का उधार :

गुरु हर राय साहिब के बड़े सुपुत्र रामराय को जब उनके प्रतिनिधि के तौर पर दिल्ली भेजा गया था, तो उसने बादशाह को खुश करने के लिए औरंगजेब के दरबार में गुरु नानक देव जी की बाणी को बदलकर पेश किया था। इस कारण गुरु हर राय जी ने उसे त्याग दिया था और सिखी में से खारिज कर दिया था। बादशाह ने उसे एक जागीर दे दी, जहाँ उसने देहरादून नगर बसाया और वहीं रहने लग पड़ा। रामराय अपने आप को असली गुरु कहलवाने लगा। मुगल बादशाह का अपने आप चापलूस बना होने के कारण वह लगातार सिखों के पक्ष को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करता रहता। अब क्योंकि गुरु गोबिंद सिंह जी पाउंटा आ गये थे जो देहरादून से केवल तीस मील दूर था, रामराय को उनसे डर लगने लग पड़ा और गुरु जी के सामने जाने का उसका साहस नहीं होता था। रामराय की संगत में इस सारी स्थिति पर चर्चा हुई। रामराय की चिंता के बारे में सुनकर गुरु जी ने भाई नंद चंद और दया राम को रामराय की तसल्ली करवाने के लिए भेजा कि उसको कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जाएगा। रामराय गुरु जी का सन्देश पाकर बहुत खुश हुआ। उसने नंद चंद और दया राम को सरोपा भेंट किया और गुरु जी के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखने का फैसला किया।

कहा जाता है कि गुरु जी और रामराय का दरिया के बीचोंबीच एक किश्ती में मेल हुआ। रामराय ने गुरु जी के चरण छूकर प्रणाम किया और कहा, "धन्य भाग्य मेरे कि आपके दर्शन हुए। जब मेरी मृत्यु हो जाएगी तो मेरे बाद मेरे परिवार की रक्षा करने की कृपा करना। मेरे पिता गुरु हर राय साहिब कहा करते थे कि कोई हमारे परिवार में जन्म लेगा जो आत्माओं को सही सलामत ले जाने के लिए जहाज को बहाल करके मरम्मत करेगा।" उसने गुरु जी से क्षमा का दान देने की विनती की। रामराय जब समाधि में बैठा था, तब उसके मसन्दों ने, रामराय की पत्नी पंजाब कौर की मिन्नत और विनतियों के बावजूद संस्कार कर दिया। गुरु जी ने पंजाब कौर की विनती पर दोषी मसन्दों को उनकी करनी की सजा दी और जो मसन्द पंजाब कौर के श्रद्धावान रहे, उन्हें ईनाम दिये।

पीर बुधू शाह :

पीर बुधू शाह एक मुसलमान फकीर था जो पाउंटा साहिब से 10 या 15 मील दूर सधौरा का वासी था। वह अपनी रब की भक्ति के लिए बड़ा प्रसिद्ध था और उसके बहुत सारे श्रद्धालू थे। उसने गुरु नानक देव जी और उनके उद्देश्य के बारे में सुन रखा था। उसे यह भी पता लगा था कि गुरु नानक साहिब की गद्दी पर अब गुरु गोबिंद सिंह जी है जो वहाँ नज़दीक ही रह रहे हैं। आखिर, उसने गुरु साहिब के पास दर्शन करने के लिए जाने का मन बनाया। गुरु जी ने आदर के साथ पीर को अपने पास बिठाया जिसने विनती की, "कृपा करके मुझे बताओ कि कोई कैसे सर्वशक्तिमान परमात्मा को मिल सकता है।" चर्चा के समय पीर विनम्रता के साथ गुरु जी की शरण में बैठा था। गुरु जी के नेत्रों में चमक थी जिनमें से दैवी प्रकाश आ रहा था और पीर एकदम खुशी के साथ पुकार उठा, "अल्लाह हू अकबर" (सर्वशक्तिमान अकाल पुरुख महान है!) पल भर के बाद पीर ने इकबाल किया, "पातशाह, मैं रुहानी तौर पर अन्धा था और आपने मुझे रोशनी दी है।" धन्य हैं वे लोग जिन पर गुरु जी दैवी मेहर की बख्शीश करते हैं।

भंगाणी का युद्ध :

एक दिन, गुरु जी को गढ़वाल के राजा फतह शाह की तरफ से उसकी बेटी के विवाह के अवसर पर आने के लिए निमंत्रण आया। इस लड़की का विवाह कहिलूर के राजा भीमचंद के पुत्र के साथ होना था जो गुरु जी से वैर–भाव रखता था। गुरु जी ने स्वयं न जाने का फैसला किया और अपनी जगह अपने दीवान, नंद चंद और दया राम को राजकुमारी के लिए तोहफे देकर भेज दिया। बारात के लिए जाने का सबसे छोटा रास्ता पाउंटा साहिब में से था, पर गुरु जी ने वहाँ से गुजरने के लिए रास्ता देने से इनकार कर दिया क्योकि उन्हें भीम चंद पर कोई भरोसा नहीं था। भीमचंद अपने संग बड़ी गिनती में फौज ला रहा था। काफी बातचीत के बाद गुरु जी ने दूल्हे और उसके साथ थोड़े से साथियों को पाउंटा साहिब के करीब नाव द्वारा पार होने की आज्ञा दे दी, परन्तु भीमचंद सहित बाकी बारात को घूमकर दूसरे रास्ते से

गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर जाना था। इस घटना से भीमचंद गुस्से से भड़क उठा और अपना गुस्सा निकालने के लिए मौका तलाशने लगा। वह यह जानकर और अधिक गुस्से में आ गया कि गुरु जी के प्रतिनिधि विवाह के समारोह में शामिल होने के लिए लड़की के घर पहुँचे थे। सो, भीमचंद ने कहा कि जब तक फतह शाह गुरु जी से मित्रता बनाये रखेगा, वह फतह शाह की बेटी का रिश्ता अपने पुत्र के साथ नहीं करेगा। इस कारण, भीमचंद ने फतह शाह को कहा कि वह गुरु जी और उसमें से किसी एक को चुन ले। फतह शाह बेबसी के कारण झुक गया। फलस्वरुप, नंद चंद और दयाराम को तोहफे वापस लेकर लौटना पड़ा। वापस लौटते हुए भीमचंद के फौजियों ने नंद चंद और उसके साथियों पर हमला कर दिया, पर वे सही–सलामत वापस पहुँचने में सफल हो गये। विवाह का कार्य सम्पन्न हो जाने के बाद भीमचंद ने फतह शाह और दूसरे पहाड़ी राजाओं – कटोच के किरपाल, गुलेर के गोपाल, हदूर के हरीचंद और जसवाल के राजा–जो विवाह में आए हुए थे, के साथ बैठकर बातचीत की। उन सबने फैसला किया कि वापस लौटते समय गुरु जी पर हमला किया जाए।

पहाड़ी राजाओं ने अपनी फौजों को पाउंटा साहिब पर चढ़ाई करने का हुक्म दिया। इस हमले की खबर फौजों के कूच करने से पहले ही गुरु जी को मिल गई और उन्हें इस हमले को लेकर कोई हैरानी नहीं हुई।

पीर बुधू शाह की सिफारिश पर 500 पठान गुरु जी की फौज में भर्ती किये गये जिनकी कमान पाँच प्रमुखों – काले खान, भीकन खान, निजाबत खान, हयात खान और उमर खान के हाथों में थी। पठान इस डर से कि गुरु जी के पास बहुत कम साधन हैं, वक्त आने पर मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए और पहाड़ी राजाओं से जा मिले, सिवाय काले खान और उसके एक सौ आदमियों के। गुरु जी ने बुधू शाह को पठान फौजियों द्वारा धोखा देकर भाग जाने की खबर दी और पीर ने इसे अपना निरादर समझा। पठानों के इस बुरे व्यवहार के हरजाने के तौर पर बुधू शाह ने अपने आप को, अपने भाई और चार पुत्रों सहित सात सौ चेलों के साथ गुरु जी की सेवा में प्रस्तुत कर दिया।

गुरु जी ने पाउंटा साहिब से लगभग छः मील दूर भंगाणी गाँव के निकट एक ऊँची चोटी पर अपनी फौजें तैनात कर दीं। बीबी वीरो जी के पाँच सुपुत्रों – संगो शाह, जीत मल्ल, गोपाल चंद, गंगा राम और मोहरी चंद ने गुरु जी की फौज की ओर से हमले की योजना बनाई और उनकी सहायता के लिए भाई दया राम, दीवान नंद चंद गुरु जी के मामा कृपाल जी और महंत किरपाल आगे आये। अपना आदेश दोहराते हुए स्वयं गुरु जी ने अपनी तलवार कस ली, तीरों का तरकश कंधे पर लटकाकर, तीर कमान हाथ में लिया और अपने घोड़े पर चढ़कर सबसे ऊँची आवाज में 'सत् श्री अकाल' का जैकारा लगाते हुए अपने दुश्मनों का सामना करने के लिए चल दिए। इतिहास में लिखा है कि गुरु जी के घोड़े के खुर तेजी से चलते हुए इतनी गर्द उड़ा रहे थे जिससे सूरज भी ढक गया और गुरु जी के फौजियों द्वारा लगाये गये जैकारों की गरज ऐसी थी जैसे बारिश के मौसम में तूफान की होती है। जैसा कि पीछे वर्णन किया गया है, गुरु जी की फौजों के साथ पीर बुधू शाह के आदमी और काले खान की कमान के नीचे एक सौ पठान साथ दे रहे थे।

दुश्मन की फौजों की अगवाई राजा फतह शाह कर रहा था जिसके साथ हदूर का राजा हरीचंद, गुलेर का राजा गोपाल, चन्देल, डढ़वाल और जसवाल के राजे और चार सौ पठान जो गुरु जी को धोखा देकर भाग खड़े हुए थे, शामिल थे। एक भयानक और लहू–लुहान युद्ध हुआ। दोनों तरफ बहुत सारे बहादुर जवान मारे गये। बेशक दुश्मन की फौज गुरु जी के आदमियों से गिनती में बहुत अधिक थी, पर उनके अन्दर न वह कुर्बानी का साहस था, न ही उनकी अपने मुखिया के लिए श्रद्धा थी, जैसी कि सिखों की थी।

महंत किरपाल ने दुश्मन के पठान प्रमुख हयात खान को मार गिराया। जीत मल्ल और राजा हरी चंद के बीच परस्पर अकेले हाथ लड़ाई हुई। दोनों के घोड़ों के माथों में तीर आकर लगे और दोनों गिर पड़े। एक क्षण के बाद, दोनों की तलवारें खनखनाईं, हरीचंद बेहोश होकर गिर पड़ा और जीत मल्ल मरकर गिर पड़ा। सांगो शाह, गुरु जी के भ्राता और पठान प्रमुख निजाबत खान की मुठभेड़ हुई और दोनों मारे गये। इस पर, गुरु जी अपने जंगी घोड़े पर सवार हुए और घमासान युद्ध में जा जूझे। उन्होंने पठान–प्रमुख भीकन खान पर एक तीर छोड़ा। वह स्वयं तो बच गया, पर तीर उसके घोड़े को लगा और घोड़ा मर गया। भीकन खान भाग उठा। इस वक्त नंद चंद और दया राम ने धोखेबाज पठानों पर कड़ा हमला किया और

उनके छक्के छुड़ा दिए। जब पहाड़ियों ने पठानों को हारते हुए देखा तो उन्होंने रणक्षेत्र में से भागना शुरू कर दिया। इस समय तक हरी चंद होश में आ गया और उसने रणक्षेत्र में आकर अपने तीरों से बहुत सारे बहादुर आदमियों को मार गिराया। यह देखकर गुरु जी हरीचंद के सामने आये और इसका वर्णन गुरु जी ने बचित्र नाटक में इस प्रकार किया है :

"पहाड़ी राजाओं में से एक हरीचंद ने गुस्से में आकर तीरों की बौछार कर दी। उसका एक तीर मेरे घोड़े को लगा और दूसरा उसने मेरे ऊपर चलाया, पर अकाल पुरुख ने मेरी रक्षा की और यह तीर मेरे कान को छूता हुआ निकल गया। उसका तीसरा तीर मेरी कमरबंद को लगा और मेरे शरीर को छू गया, पर कोई ज़ख्म न हुआ। केवल अकाल पुरुख ही मेरी, अपने सेवक की, रक्षा कर रहे थे। जब मुझे तीर का स्पर्श महसूस हुआ तो मेरी रूह उजागर हुई। मैंने अपना तीर–कमान पकड़ा और निशाना बांधकर अपने पहले तीर से ही जवान राजा हरी चंद को मार गिराया। मैंने बहुत सारे तीर छोड़े, जिससे मेरे दुश्मन भागने लग पड़े। कोरारी का राजा भी मौत के मुँह में आ गया। यह देखकर पहाड़ी योद्धा अफरा–तफरी में भाग खड़े हुए और सर्वशक्तिमान अकाल पुरुख की कृपा से मुझे विजय प्राप्त हुई।"

गुरु जी उस स्थान पर गये जहाँ सांगो शाह, जीत मल्ल और अन्य बहादुर सिखों के मृतक शरीर पड़े थे। बुधू शाह के दो पुत्र भी मारे गये थे। गुरु जी ने हुक्म दिया कि दोनों ओर के मारे गये योद्धाओं के शरीरों का बड़े सत्कार के साथ अन्तिम संस्कार किया जाये। सिखों के शरीरों का संस्कार किया गया, हिंदुओं की मृत देहों को नदी के जल में प्रवाहित किया गया और मुसलमानों के शरीरों को पूरी संजीदगी के साथ दफनाया गया। पीर बुधू शाह अपने दो बच रहे पुत्रों के साथ गुरु जी के पास आया। गुरु जी उस समय अपने केश कंघे से साफ कर रहे थे। बुधू शाह ने गुरु जी के सामने विनती की कि वह कंघा उससे उतरे केशों सहित अपनी एक पवित्र याद के तौर पर भेंट में दे दें। गुरु जी ने पीर को अपनी दस्तार, केशों सहित कंघा और एक कृपाण भेंट में दे दी। सबसे बड़े दान के रूप में गुरु जी ने उसे 'नाम' का दान भी दिया।

भंगाणी के युद्ध का महत्व :

भंगाणी के युद्ध में मिली विजय दूरगामी महत्व रखने वाली थी। इसने सिखों के उत्साह में वृद्धि कर दी और उन्होंने सदाचार को और अधिक मजबूत किया। क्योंकि गुरु जी ने एक इंच धरती भी ग्रहण नहीं की या कोई भौतिक लाभ नहीं उठाया था, जिसके कारण उस उद्देश्य को अधिक मजबूती मिली, जिस उद्देश्य के वे समर्थक थे। गुरु जी का यश दूर–दूर तक फैल गया जिसके फलस्वरूप गुरु जी को शस्त्रों और घोड़ों की भेंटें अत्याधिक रूप में आने लगीं और सैकड़ों लोगों ने गुरु जी की फौज में भरती होने के लिए आना आरंभ कर दिया। गुरु जी की विजय ने दिल्ली के मुगल राज्य को भी चौकन्ना किया। पहाड़ी राजाओं ने भी सारे मामले पर फिर से सोच–विचार किया। बेशक पहाड़ी राजाओं और गुरु जी के आदर्श एक दूसरे से बिलकुल उलट थे, पर ये राजा अपने स्वार्थवश, ताकि कि मुगलों के स्वामीत्व को रोककर मुगल बादशाह को दिए जाने वाले वार्षिक राजस्व से मुक्त हुआ जा सके, गुरु जी के साथ मित्रता के सम्बन्ध बनाना चाहते थे। इसलिए उनके प्रमुख राजा भीम चंद ने गुरु जी से समझौता कर लिया।

आनंदपुर की वापसी :

गुरु जी लगभग तीन वर्ष पाउंटा साहिब रहे और उनकी प्रसिद्धि कवियों, गवैयों और विद्वानों को उनके दरबार में खींच लाई। **इस दौरान, गुरु जी ने जपुजी साहिब, सवैये और 'अकाल उस्तत बाणियों' की रचना की।**

गुरु जी ने अपनी फौज को आनंदपुर वापस आने के लिए आदेश दिया और स्वयं सधौरा के रास्ते वापस आये। फिर कुछ दिनों के लिए लहिरपुर ठिकाना किया। नाहन के राजा ने अपना एक ऐलची भेजा, गुरु जी से विनती करने के लिए कि राजा गुरु जी के दर्शन करना चाहते हैं। पर वह ऐसा कभी भी न कर

सका। गुरु जी नाहन छोड़कर रामगढ़ रियासत में आये और एक हफ्ता से अधिक तबरा मकाम में ठहरे। फिर वह रायपुर[2], वहाँ की रानी के निमंत्रण पर गये। रानी ने गुरु जी की खूब शानदार आवभगत की और एक सुन्दर घोड़ा, कीमती साज–सामान के साथ रुपयों की एक थैली भेंट की। गुरु जी ने उसके पुत्र को एक तलवार और एक ढाल प्रदान की। इसके बाद गुरु जी आनंदपुर की ओर चल पड़े। टोड़ा, हाडा, ढकम्मी, कोटला, घटोला, बंगा में से होते हुए गुरु जी कीरतपुर पहुँचे। वहाँ से गुरु जी अक्तूबर 1687 में आनंदपुर आ गये। बड़े साहिबजादे अजीत सिंह का जन्म माघ शुक्ल पक्ष चार, सम्वत् 1743 (सन् 1687 ई.) में हुआ।

अलिफ खान की चढ़ाई :

दक्षिणी भारत मुगल राज्य से बागी हो गया था। इसलिए, बादशाह औरंगजेब दक्षिणी भारत में बगावत को दबाने के लिए बहुत साल उलझा रहा। एक लम्बे समय की ऐसी लड़ाई का सारा खर्च उत्तरी और पूरबी सूबों पर भारी टैक्स लगाकर किया जाता था। उस समय मियाँ खान जम्मू का सूबेदार था। उसने अपने प्रमुख सेनापति अलिफ खान को पहाड़ी राजाओं से राजस्व(खिराज) उगाहने के लिए भेजा। अलिफ खान ने पहले कांगड़े के राजा किरपाल से कहा, "या तो कर दो या मेरे साथ युद्ध करो।" राजा किरपाल ने उसे कुछ तोहफे दिये और कहा कि पहाड़ी राजाओं में सबसे बड़ा राजा भीमचंद है। अगर वह पहले खिराज दे तो बाकी के सभी राजा उसके पीछे चलेंगे। अगर भीमचंद इन्कार करेगा तो वह उसका साथ देगा। बिजरवाल के राजा दयाल को राजा किरपाल ने अलिफ खान की मांगें मानने के लिए मना लिया।

अलिफ खान राजा किरपाल की तजवीज़ के अनुसार भीमचंद की
रियासत की राजधानी की ओर गया। स्वयं वह नदौण में ठहर गया और अपना ऐलची भीमचंद के पास भेजा, अपनी मांगों को लेकर। भीमचंद ने उत्तर दिया कि वह खिराज देने के बदले युद्ध का सामना करेगा। पर उसके प्रधानमंत्री ने सलाह दी कि यदि वह फतह चाहता है तो इसे यकीनी बनाना केवल गुरु जी की सहायता से ही हो सकेगा। सो, भीमचंद ने प्रधान मंत्री को गुरु जी के पास युद्ध में सहायता करने के लिए भेजा। गुरु जी ने खिराज न देने के आंदोलन की हिमायत करना स्वीकार कर लिया जिसका अर्थ था – मुगल साम्राज्यवाद के विरोध में साहस दिखाना। गुरु जी स्वयं एक तगड़ा सैन्य दल लेकर आये। जसवाल, डढ़वाल और जसरोट के राजा भी लड़ाई में शामिल होने के लिए आ गये।

भीमचंद ने तीरों की बौछार से पहला हमला किया, पर शत्रु पर इसका प्रभाव न पड़ा, क्योंकि शत्रु का स्थान ऐसा था कि तीर उस की गढ़ी की बल्लियों को ही लगे। भीमचंद की फौजों ने हिम्मत हारना शुरू कर दिया। इस नाजुक अवसर पर गुरु जी ने सबसे अधिक असरदार हिस्सा डाला। गुरु जी ने अपनी बन्दूक पकड़ी और राजा दयाल की ओर निशाना साधा। बहादुरी के साथ लड़ता हुआ राजा धरती पर आ गिरा। गुरु जी ने दुश्मन की फौजों पर तीरों की बौछार लगा दी। तीरों और गोलियों की भरमार हो गयी और युद्ध का रुख इनके पक्ष में हो गया। अलिफ खान और उसकी फौज भाग खड़ी हुई और भीम चंद की विजय हुई। वह कुछ समय तक नदौण में ही रहा जहाँ उसने राजा किरपाल को बिचौलिया बनाकर अलिफ खान से एक समझौता कर लिया।

गुरु जी हफ्ता भर वहाँ रहकर आनंदपुर वापस लौट आये। आप के दूसरे साहिबजादे जुझार सिंह का जन्म 7 चैत्र सम्वत् 1747 (सन् 1691 ई.) को हुआ।

दिलावर खान की ओर से गुरु जी की ताकत कमजोर करने की कोशिश :

दिलावर खान जो औरंगजेब के दक्षिण में होने के कारण पंजाब में ताकतवर हो बैठा था, गुरु जी के यश और सफलता को देखकर ईर्ष्या करने लगा। उसने अपने पुत्र खानज़ादा को एक हजार फौजियों के साथ आनंदपुर गुरु जी की ताकत को कमजोर करने के लिए भेजा। खानज़ादा ने आधी रात के समय अंधेरे में सतलुज नदी पार कर ली थी जब गुरु जी के मुखबर आलम खान ने फुर्ती से आकर गुरु जी को इस दुश्मन के आने के बारे में सूचना दी। उसी पल 'रणजीत नगाड़े' को पीटा गया और गुरु जी के सैनिक तुरन्त ही नदी की ओर चल दिए। सिखों की इतनी जल्दी आई सेना को देखकर दुश्मन की फौज घबरा गई और गोलियों की बौछार ने खानज़ादा की सेना को इतना भयभीत कर दिया कि वह पीछे की ओर भागने के लिए मजबूर हो गई। पर उसने वापस लौटते हुए राह में पड़ने वाले बरवा गाँव को लूट लिया। खानज़ादा को जब उसकी बुज़दिली को लेकर झाड़ पड़ी, वह मारे शर्म के अपने बाप को कोई उत्तर न दे सका। यह घटना सन् 1694 के अन्त में घटित हुई थी।

हुसैन खान का धावा :

दिलावर खान का एक हुसैन नाम का गुलाम था, जो शेखी मारा करता था कि अगर उसे एक कमांडर बनाया जावे तो वह आनंदपुर शहर तबाह कर देगा और भीमचंद और दूसरे पहाड़ी राजाओं से खिराज वसूल करके ले आएगा। खानज़ादे की असफलता ने दिलावर खान को गुरु जी पर एक बहुत बड़ा हमला करने की योजना बनाने के लिए उकसाया। सो, उसने हुसैन खान को दो हजार की सेना से साथ भेजा। हुसैन ने डढ़वाल के राजा को अपनी ओर कर लिया और दून वादी को लूट लिया। कांगड़े का राजा किरपाल भी उसके संग आ मिला। भीमचंद ने भी अपना हाथ हुसैन की ओर बढ़ा लिया। तब उसने किरपाल और भीमचंद की सहायता से आनंदपुर की ओर हमले के लिए कूच करने की योजना बनाई। गुरु जी ने किसी बड़े हमले के लिए अपनी फौजें पहले ही तैयार करके रखी हुई थीं।

जब हुसैन आनंदपुर की ओर धावा बोलने की तैयारियाँ कर रहा था, गुलेर के राजा गोपाल ने उसके पास संधि के लिए अपना दूत भेजा। हुसैन ने उत्तर दिया कि वह अन्य राजाओं की तरह माली सहायता दे तो वह राजा गोपाल से मिलकर खुश होगा। राजा गोपाल कुछ रकम लेकर आया, पर इस रकम से हुसैन को तसल्ली न हुई। हुसैन की शर्त थी कि दस हजार रुपये दिए जाएँ, नहीं तो वह गोपाल और उसकी सेना को मौत के घाट उतार देगा। गोपाल ने इतनी बड़ी रकम न दे पाने की दलील दी और वापस आ गया। अब राजा गोपाल ने गुरु जी के पास अपना दूत भेजा, यह विनती करने के लिए कि वह हुसैन के साथ बातचीत के जरिये समझौता करवा दें। गुरु जी ने सात फौजी रक्षकों के साथ अपना प्रतिनिधि संगतिया भेजा, गोपाल और हुसैन के बीच बातचीत के जरिये सुलह–सफाई करवाने के लिए। दोनों दल किसी समझौते पर नहीं पहुँच सकें, जिसके कारण हुसैन, किरपाल और भीमचंद एक तरफ और राजा गोपाल तथा राजा राम सिंह दूसरी तरफ हो गये। दोनों के बीच लड़ाई छिड़ गई। बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए हुसैन रणक्षेत्र में मारा गया। कांगड़े के राजा किरपाल का भी कत्ल हो गया। हुसैन खान के दो अफसर हिम्मत और किम्मत भी मारे गये। दूसरी तरफ गुरु जी का दूत संगतिया और उसके सात सैनिक भी मारे गये। यह देखकर भीमचंद अपनी फौज सहित भाग खड़ा हुआ। इस फतह के बाद राजा गोपाल गुरु जी के पास बहुत सारे उपहार लेकर उपस्थित हुआ और गुरु जी की मेहर के लिए धन्यवाद किया, जिसके कारण उसको रणक्षेत्र में सफलता मिली थी।

गुरु जी के तीसरे साहिबजादे जोरावर सिंह का जन्म संवत् 1753 (सन् 1697) के माघ महीने के मध्य में हुआ।

अपराजित हो जाने के कारण दिलावर खान बड़ा तंग हुआ। उसने जुझार सिंह और चंडेल राय को जसवाल भेजा, पर वह अपना मनोरथ पूरा न कर सके। लेकिन, उन्होंने उस रियासत में एक फौजी महत्व वाला स्थान भल्लन कब्जे में ले लिया। इससे पहले कि वे आगे बढ़ सकते, जसवाल के राज सिंह ने उन पर धावा बोल दिया। जुझार सिंह और चंडेल राय दोनों शेरों की तरह लड़े, पर जुझार सिंह मारा गया और चंडेल राय भाग गया।

शाही फौजों की हार ने औरंगजेब को चिंता में डाल दिया और उसने अपने पुत्र शहजादा मुअज्ज़म जिसका बाद में बहादुर शाह नाम पड़ा, को भेजा– पहाड़ी इलाके में फिर से शाही नज़ाम को कायम करने के लिए। शहजादे ने अगस्त 1696 में अधिकार संभाला और मिर्जा बेग को पहाड़ी राजाओं को सबक सिखाने के लिए नियुक्त किया। मिर्जा ने हार पर हार दी, गाँव जला दिए, इलाके में लूट मचा दी। मिर्जा बेग के बाद शहजादे ने चार और अफसर भेजे जिन्होंने साथ ही साथ पहाड़ी राजाओं को सजाएँ दीं और जो मिर्जा बेग के हाथों बरबादी से बच गये थे, उनके घर लूट लिए।

समय आने पर गुरु जी के चौथे साहिबजादे फतह सिंह ने बुधवार 11 फागुन संवत् 1755 (सन् 1699) को जन्म लिया। पहाड़ों के एकान्त और शान्तमयी वातावरण में गुरु जी संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद संवत् 1755 (सन् 1698) में किया। गुरु जी के कथन के अनुसार, उन्होंने 'राम अवतार' का संस्कृत से हिंदी में अनुवाद पूरा किया। बहुत सारी रचनाएँ जो गुरु जी की कही जाती हैं, उनकी नहीं थीं। मैकालिफ लिखता है :

"जो रचना दशम ग्रंथ नाम से है, उसमें केवल कुछ हिस्से ही गुरु जी द्वारा रचित हैं। इसका अधिकांश हिस्सा पुरातन कवियों का लिखा हुआ है, जो गुरु जी की नौकरी में थे। दो कृतियाँ –'चंडी चरित्र' और 'भगवती की वार' अलग–अलग हाथों से किये हुए 'दुर्गा सप्तशती' के संक्षिप्त अनुवाद हैं। ये सात सौ श्लोक दुर्गा के बारे में 'मारकण्डे पुराण' में एक कथा के रूप में है, जिनमें दुर्गा देवी की राक्षसों से उन लड़ाइयों का वर्णन है, जो राक्षसों और देवताओं के बीच आरंभ हुई थीं। कोई भी जो हिंदी की मोटी–मोटी जानकारी रखता है, वह इन अनुवादों की शैली से बता सकता है कि यह अनुवाद अलग–अलग व्यक्तियों ने किए हुए हैं।"

गुरु जी के दरबार में 52 कवि[3] थे– महाभारत, रामायण और राम, कृष्ण, चंडी और अन्य कइयों की बहादुरी के कारनामों का अनुवाद करने के लिए। इसका यह अर्थ नहीं कि गुरु जी उन शोभनीय कारनामें करने वालों की

पूजा करते थे। ये अनुवाद केवल अपने धर्म की रक्षा करने वाले सैनिकों के हृदय दिलेरी से भरने, वीरता के लिए उत्साहित करने और कायरता से दूर रखने के लिए किये थे। इसकी गुरु जी ने स्वयं, भागवत के दसवें अध्याय का

अनुवाद करते हुए पुष्टि की है : "मैंने भागवत के दसवें अध्याय को अशिष्ट बोली में अंकित किया है, केवल धर्म युद्ध के लिए तीव्रता उभारने की खातिर।"

गुरु जी ने कभी भी एक अकाल पुरुख के सिवाय किसी दूसरे पर श्रद्धा नहीं रखी और न ही किसी की पूजा की। गुरु जी 'अकाल उस्तत' में कहते हैं :

"तुमहि छाडि कोई अवर न धिआउ।
जो बर चहों सु तुम ते पाउ।"

गुरु जी ने इस को अपने तैंतीस सवैया में भी इस तरह स्पष्ट किया है :

"काहू लै ठोक बधे उर ठाकर काहूं महेश के ऐस बखानियो।
काहू कहयो हरि मंदरि मैं, हरि काहूं मसीत के बीच प्रमानियो।
काहूं ने राम कहियो कृष्णा काहूं, काहूं मने अवतारन मानियो।
फोकट धरम बिसार सभै, करतार ही कउ करता जीअ जानियो।।2।।
(सवैया 12)

"काहे को ऐस महेसहि भाखत, काहे दिजेस को ऐस बखनियो।
है न रघवेस जदवेस रमापति, तै जिनको बिसवनाथ पछानियो।
ऐक को छाड अनेक भजै सुकदेव, परासर बियास झुठानियो।
फोकट धरम सजै सब ही, हम ऐक ही को बिध नेक प्रमानियो।"
(सवैया 15)

खालसा की स्थापना :

गुरु जी ने देश भर में अपने श्रद्धालुओं को सम्वत् 1756 (सन् 1699) में होने वाले बैशाखी के त्यौहार पर आनंदपुर आने के लिए हुक्मनामे भेजे। ऐसा लगता था मानो सारा पंजाब ही चल पड़ा हो और देश के चारों ओर से गुरसिख आए। एक छोटी–सी पहाड़ी जिसका नाम आनंदपुर में केसगढ़ साहिब है, पर एक तम्बू लगाया गया और खुले स्थान पर दीवान सजा। **गुरु जी ने खड़े होकर अपनी तलवार हाथ में ली और संगत को गरजती आवाज में सम्बोधित हुए, "मुझे एक शीश की ज़रूरत है, है कोई जो अपना शीश भेंट कर सकता है ?"** सबसे अधिक अनौखी इस मांग ने संगत को भयभीत कर दिया और लोग घबरा गये। घोर सन्नाटा छा गया। गुरु जी ने दुबारा मांग की। कोई आगे न आया। पहले से भी अधिक चुप पसर गई। तीसरी बार मांगने पर लाहौर का **एक खत्री दया राम उठा और हाथ जोड़कर बोला, "सच्चे पातशाह, मेरा शीश आपकी सेवा में हाजिर है।"** गुरु जी दया राम की बांह पकड़कर तम्बू में ले गये। एक झटके और धड़ाम से कुछ गिरने की आवाज तम्बू में से आई। फिर गुरु जी अपनी लहू टपकती तलवार हाथ में लिए बाहर आए और ललकार कर कहा, "मुझे एक और शीश की ज़रूरत है। कोई है जो देगा ?"

नोट : बहुत सारे लेखक जिनमें कई सिख लेखक भी हैं, लिखते हैं कि गुरु जी ने पिछली रात तम्बू में पाँच बकरे छिपाकर रखे हुए थे, जिनके बारे में किसी को कुछ पता नहीं था। सो, जब गुरु जी दया राम को तम्बू में ले गये तो उन्होंने दया राम के सिर के बजाय एक बकरे का सिर काट दिया। इन लेखकों के लिए गुरु जी के दैवी कार्यों को समझना कठिन है। वे अनुभव नहीं कर सकते कि गुरु जी दया राम का शीश काटकर उसे दुबारा जीवित करके तम्बू में से बाहर ला सकते थे। इन लेखकों को यह समझने की आवश्यकता है कि गुरु जी एक ईश्वरीय ज्योति थे और गुरु नानक देव जी की इलाही गद्दी पर बैठे हुए थे। ये लेखक गुरु जी का पूर्ण निरादर कर रहे हैं, यह संकेत देकर कि गुरु जी पार–शारीरिक कार्य करने में समर्थ नहीं थे। ऐसे विचारों से ये लेखक गुरु जी के अपमान के दोषी हैं। गुरु जी के पास मुर्दा को जिन्दा करने की शक्ति थी। गुरबाणी इसकी पुष्टि करती है :

"सतिगुर मेरा मारि जीवाले।"

(भैरउ महल्ला 5, पृष्ठ 1142)

यह कोई साधारण करिश्मा नहीं था। यह तो सबसे बड़ा लासानी और दैवी कार्य था जो सीधा अकाल पुरुख की रज़ा के द्वारा हुआ। गुरु जी ने स्वयं इसे प्रमाणित किया है :

"खालसा अकाल पुरख की फौज
प्रगटिओ खालसा प्रमातम की मौज।"

(गुरु गोबिंद सिंह जी– सरबलोह ग्रंथ)

फिर, इस बार धर्म दास, दिल्ली का एक जाट आगे आया और बोला, "सच्चे पातशाह, मेरा सिर आपकी सेवा में हाजिर है।" गुरु जी धर्म दास को तम्बू में ले गये, एक झटके और धड़ाम से गिरने की आवाज पुनः बाहर सुनी गई। गुरु जी लहू भीगी तलवार हाथ में पकड़े बाहर आए और फिर उसी आवाज में बोले, "मुझे एक और सिर की ज़रूरत है। है कोई प्यारा सिख जो सिर भेंट करेगा ?"

इस पर कुछ लोग संगत में से कहने लगे कि गुरु जी की बुद्धि मारी गई है और उठकर गुरु जी के माताजी के पास शिकायत करने चले गये। तीसरी आवाज पर मोहकम चंद[4] द्वारका (भारत के पश्चिमी समुद्र के किनारे पर) का एक धोबी, आगे बढ़ा और उसने अपना शीश कुर्बानी के लिए हाजिर किया। गुरु जी उसे भी तम्बू के अन्दर ले गये और वही खेल दुहराया। जब गुरु जी बाहर आए तो उन्होंने चौथे शीश के लिए आवाज दी। संगत में सिख सोचने लग पड़े कि गुरु जी सभी को कत्ल कर देंगे। उनमें से कुछ भाग खड़े हुए और कुछ गर्दन झुकाये बैठे रहे। चौथी कुर्बानी के लिए जगन्नाथ पुरी का एक रसोइया हिम्मत चंद हाजिर हुआ। फिर, गुरु जी ने पाँचवी और अन्तिम आवाज दी। साहिब चंद, जो मध्य भारत में बिदर का वासी था, आगे बढ़ा। गुरु जी उसको भी तम्बू में ले गये और पहले की तरह झटके और धड़ाम की आवाज बाहर सुनाई दी।

अन्तिम बार गुरु जी तम्बू के अन्दर अधिक समय तक रुके। लोगों ने सुख की सांस ली। गुरु जी ने पाँचों सिखों को सुन्दर वस्त्र पहनाये। इन्होंने गुरु जी को अपने शीश भेंट किये और अब गुरु जी ने इन्हें अपना आपा और तेज–प्रताप दिया। जब इन्हें गुरु जी तम्बू से बाहर लाए, तो ये दमकते–चमकते रूप में

थे। सब ओर आश्चर्य के बोल और पष्चाताप की आहें उठ रही थीं। अब लोगों को दुख हो रहा था कि उन्होंने अपने शीश अर्पण क्यों नहीं किए।

गुरु नानक देव जी के समय से सिख धर्म में शामिल होने के लिए 'चरण–पाहुल'(चरणामृत) देने की मर्यादा थी। लोगों को गुरु जी के चरण या चरणों के एक अंगूठे को छुआकर या धोकर वह पानी पीने के लिए दिया जाता था। गुरु गोबिंद सिंह जी ने नई मर्यादा आरंभ की। पाँचों गुरसिखों को खड़े होने के लिए कहा। फिर, एक सरबलौहे के बाटे में निर्मल जल डाला और उसे एक खंडे (दुधारी छोटी तलवार) से हिलाने लगे। हिलाने के साथ–साथ पाँच बाणियों (जपुजी, जाप साहिब, आनंद साहिब, सवैये और चौपाई) का पाठ करते गये। उस समय माता साहिब कौर जी पताशे लेकर आए थे, जो जल में डाल दिये गये।

इस तरह तैयार हुए अमृत का बाटा उठाकर गुरु जी खड़े हो गये। पाँचों गुरसिखों ने बारी बारी से अपना बायां घुटना टेक कर वीर–आसन में बैठ गुरु जी के दिव्य प्रकाश की याचना की। गुरु जी ने हरेक को पाँच–पाँच चुल्लू अमृत के छकाये, पाँच–पाँच बार उनके नेत्रों में छींटे मारे और हर बार छींटे मारते हुए ऊँचे स्वर में कहा, "वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतह।" फिर, गुरु जी ने अमृत के पाँच–पाँच छींटे पाँचों के केशों में डाले।

इस प्रकार, पाँचों गुरसिखों को एक ही बाटे में से अमृत छकाया गया। उसके बाद गुरु जी ने पाँचों को उसी बाटे को मुँह लगाकर अमृत को घूंट–घूंट पीने को कहा, जिसका अर्थ था कि उन्होंने **जात–पात रहित, खालसा पंथ** में प्रवेश कर लिया है। पाँचों को इस तरह अमृतधारी सजाकर अब गुरु जी ने उन्हें '**पाँच प्यारे**' कहकर बुलाया और **'सिंह' अर्थात 'शेर'** का नाम दिया। सो, पाँच प्यारे अब दया राम से दया सिंह, धर्म दास से धर्म सिंह, मोहकम चंद से मोहकम सिंह, हिम्मत चंद से हिम्मत सिंह और साहिब चंद से साहिब सिंह हो गये। तब गुरु जी ने उसने कहा– **अब तुम सर्वश्रेष्ठ, स्वतंत्र और खालिस हो और उन्हें खालसा नाम दिया।**

फिर, गुरु जी ने उन्हें ये आदेश दिए :

(1) सबसे पहले पाँच ककार धारण करें(जिनके नाम 'क' अक्षर से शुरू होते हैं) :
   1. पूर्ण केश : ये कुदरती संत स्वरूप को दर्शाते हैं और सिख धर्म की पहली निशानी है।
   2. कंघा : सिर और दाढ़ी के केशों को साफ करने के लिए।
   3. कच्छा : यह जती–सती(पाक–साफ) रहने का सूचक है।
   4. कड़ा : दायीं कलाई में पहना यह अकाल पुरुख के लिए श्रद्धा की निशानी है।
   5. कृपाण : स्व–रक्षा के लिए और गौरव, शक्ति और अजित स्वभाव का सूचक है।

(2) निम्नलिखित निर्देशों का पालन करेंगे :
   1. शरीर के किसी हिस्से से केश नहीं काटेंगे।
   2. तम्बाकू या अन्य किसी नशे का सेवन नहीं करेंगे।
   3. कुट्ठा(हलाल) अर्थात मुसलमान ढंग से धीरे–धीरे जिबह किये जीव का मांस नहीं खाएँगे।
   4. पर नारी से भोग नहीं करेंगे। "पर नारी की सेज भूल सुपने हूं न जईए।"
      (इनके संबंध में बाद में एक हुक्मनामा जारी किया गया था कि अगर कोई भी जो इन चार निर्देशों का पालन नहीं करेगा, उसको दुबारा अमृत छकना होगा, जो जुर्माना होगा वह देना पड़ेगा और प्रतिज्ञा करनी होगी कि वह फिर से ऐसा अपराध नहीं करेगा। नहीं तो वह खालसा पंथ में से निष्कासित कर दिया जाएगा)।

(3) उनके लिए ज़रूरी है कि सूर्योदय के समय जागें, स्नान करके 'वाहिगुरु' गुरमंत्र और जपुजी के मूल मंत्र का जाप करें और पाँच बाणियों का रोज सवेरे जपु जी, जाप साहिब और सवैया का, संध्या के समय रहिरास और रात को सोने के समय सोहिला(कीर्तन) का पाठ करें।

(4) वह विवाह का रिश्ता किसी तम्बाकू पीने वाले, बेटियों को

मारने वाले, पष्थी चंद, धीरमल्ल, रामराय या मसन्दों के
अनुयायिओं के साथ, या गुरु नानक देव जी के उपदेशों और
नियमों से मुँह मोड़ चुके लोगों से नहीं करेंगे।

(5) वे मूर्तियों, कब्रों, श्मशानों की पूजा नहीं करेंगे और केवल एक अकाल पुरुख को मानेंगे।

गुरु जी ने यह भी आदेश दिया कि वे शस्त्रों का अभ्यास करते रहें और रण–क्षेत्र में दुश्मन को पीठ न दिखायें। उन्हें सदैव गरीबों की सहायता और जो उनके पास रक्षा के लिए आएँ, उनकी रक्षा करनी चाहिए। वे अपनी पिछली जातियाँ मिटा कर और अपने आप को एक परिवार के भाई समझें, गुरसिख गुरसिखों में ही विवाह करें।

स्वयं गुरु शिष्य :

गुरु जी पाँचों प्यारों को अमृत छका चुके तो हाथ जोड़कर खड़े हो गये और पाँचों प्यारों से याचना की कि अब वे उन्हें उसी तरह अमृत छकायें जैसे उन्होंने उन्हें छकाया था। यह एक उच्च कोटि की अलौकिक घटना थी, संसार में लासानी उदाहरण कायम करने की कि पहले गुरु के तौर पर उन्हें खासला बनाया और उन्हें शक्ति, सर्व–श्रेष्ठता और गौरव बख्शा और फिर स्वयं उनके शिष्य बन गये। वाहु वाहु गुरु गोबिंद सिंह जी, खुद ही गुरु और खुद ही चेला बन सकता था, पर एक गुरु, चेला कभी नहीं बना था। पाँच प्यारे इस याचना पर हैरान रह गये और उन्होंने अपनी तुच्छता और गुरु जी की महानता का वर्णन किया, जिस गुरु जी को वे अकाल पुरुख के धरती पर उप–आचार्य मानते थे। उन्होंने विनती की, "सतगुरु जी, आप यह याचना क्यों कर रहे हैं और हमारे सामने हाथ क्यों जोड़ रहे हैं ?" गुरु जी ने उत्तर दिया, "मैं अकाल पुरुख का पुत्र हूँ। उसके हुक्म से ही मैंने संसार में जन्म लिया है और अमृत की मर्यादा को चलाया है। जो इसे स्वीकार करेंगे, वे अब से खालसा जाने जाएँगे। खालसा गुरु है और गुरु खालसा है। आपके और मेरे बीच कोई फर्क नहीं। जैसे गुरु नानक देव जी ने गुरु अंगद देव जी को गुरगद्दी पर बिठाया था, उसी तरह मैंने भी आपको गुरु बना दिया है। सो, आप बिना किसी झिझक के मुझे अमृत छकाओ।"

सो, पाँचों प्यारों ने गुरु जी को उसी रीति से अमृत छकाया और आदेश दिये जो गुरु जी ने उनके लिए निश्चित किये थे। तब गुरु जी का नाम भी गोबिंद राय के बदले गोबिंद सिंह हो गया।

खालसे, अर्थात पाँच प्यारों में से सबसे पहले गुरु जी थे, जिन्होंने अमृत छका। कुछ दिनों में अस्सी हजार पुरुषों और स्त्रियों ने आनंदपुर में अमृत छका।

खालसा की स्थापना करके गुरु जी ने एक व्यक्ति में दो गुणों का संचार किया। खालसा सन्त सिपाही है। एक, सिख सन्त है क्योंकि वह सब ओर व्याप्त दैवी ज्योति की पूजा करता है और जिसमें उस ज्योति का प्रकाश पूर्णिमा के चंद्रमा की भाँति रातदिन चमकता है। सिख सिपाही है क्योंकि वह सत्य और न्याय को कायम रखने के लिए शस्त्र उठाने के लिए सदैव तैयार है।

गुरु जी ने पाँच प्यारों (खालसा) से इकरार किया कि वे जब भी गुरु जी को हुक्म देंगे, गुरु जी उसे स्वीकार करेंगे। यह थी लोकतांत्रिक खालसे की स्थापना। गुरु जी ने इस वायदे को पूरा किया था, जब चमकौर के युद्ध के समय पाँच प्यारों का हुक्म मानकर गढ़ी छोड़कर चले गये थे।

गुरु जी अपने प्यारे खालसे के लक्षण स्वयं बताते हैं :

"जागत जोति जपै निसबासुर एक बिना मन नैक न आनै।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै ब्रत गौर मड़ी मट भूल न मानै।
तीरथ दान दया तप संजम एक बिना नहि एक पछानै।
पूरन जोत जगै घट मै तब खालस ताहि नखालस जानै। 1।"

(गुरु गोबिंद सिंह जी, 33 सवैये)

फारसी इतिहासकार गुलाम–उल–दीन, उस समय के समाचार लेखक ने औरंगजेब को गुरु गोबिंद सिंह जी के वैशाख की पहली तारीख, सम्वत् 1756 (सन् 1699 ई.) को सिखों को दिये फरमान की नकल भेजी, जो इस प्रकार थी :

"आओ सब एक धर्म धारण करके धर्मों के मतभेदों को खत्म कर दो। हिन्दुओं की चारों जातियों जिनके अलग नियम हैं, हटा कर एक तरह की पूजा करो और एक दूजे के भाई बनो। कोई भी अपने आप को दूसरे से अधिक अच्छा न समझे। कोई भी गंगा या दूसरे तीर्थों, जिन्हें शास्त्रों में आदर दिया गया है, की ओर ध्यान न दे, न ही राम, कृष्ण, ब्रह्मा, दुर्गा जैसे अवतारों में श्रद्धा रखे, बल्कि गुरु नानक साहिब और अन्य सिख गुरुओं को माने। चारों जातियों वाले मेरा अमृत छकें, एक ही बरतन में खायें और एक–दूसरे से न तो उकताएँ, न ही घृणा करें।"

जब गुरु जी ने संगत का संबोधित किया था तो कई ब्राह्मण और खत्री खड़े हो गये और उन्होंने गुरु नानक जी का धर्म परवान कर लिया जबकि दूसरे लोग जोर देने लगे कि वह ऐसा धर्म कभी भी धारण नहीं करेंगे, जो वेदों और शास्त्रों में दिये आदेशों के विरुद्ध हो।

जैसा कि पीछे कहा गया है, सबसे पहले गुरु गोबिंद सिंह जी ने पाँच प्यारों से स्वयं अमृत छका और फिर अपने सिखों को अमृत छकने के लिए आदेश दिया है। रहित नामों में लिखा है कि गुरु साहिब ने कहा है :

"रहित पिआरी मुझ कउ, सिख पिआरा नाहि।"

"रहिणी रहै सोई सिख मेरा! ओह साहिब मै उसका चेरा।"

अब तक लोगों का नेतष्त्व अहिंसावादी शहरी क्षत्रियों के हाथों में रहा था जिनमें से बहुत से मसन्द बनाये गये थे। पर अब हालात बदल गये थे। खासला पंथ में प्रवेश करने वालों में किसान और ग्रामीण इलाकों के दूसरे वर्ग के लोगों का एक बड़ा भाग था। मनुष्यता से रहित लोग भी एक जादू की भांति शानदार और उत्तम दर्जे के बन गये थे। चूहड़े, नाई और नानबाई जिन्होंने तलवार को कभी हाथ नहीं लगाया था और जिनकी सारी पुश्तें ऊँची जातियों के लोगों की गुलाम रही थीं, वे गुरु जी के उत्साहजनक नेतृत्व के अधीन जंगजू सूरमे बन गये थे।

सैद्धान्तिक तौर पर खालसे की स्थापना भक्ति और शक्ति के संतुलित मिश्रण के मंतव्य को सामने रखकर की गई थी, जो नैतिक और आध्यात्मिक उत्तमता और सबसे उँचे दर्जे की वीरता अर्थात शूरवीरता का सम्मिश्रण भी था, या फिर, दूसरे शब्दों में, खालसा एक ही समय में अर्थात साथ ही साथ धर्म और शक्ति का भाईचारा था। खालसा अपने आप में गुरु नानक देव जी के आरंभ किये सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन को पूरा करने के लिए दृढ़ता का प्रतीक था। इस नये स्थापित खालसे के लिए आचरण की नियमावली इस प्रकार बनाई थी कि यह सिखों के लिए एक कड़ा अनुशासन स्थापित करे ताकि वे सिख धर्म के पावन और ऊँचे आदर्शों की पूर्ति के लिए अपनी दृढ़ सम्मति और प्रतिबद्धता को यकीनी बनायें।

खालसा की स्थापना के साथ–साथ कुछ नये सिद्धान्त भी स्थापित हुए। खालसे का पहला सिद्धान्त था –धर्मतांत्रिक गणतंत्र जिसके अधीन समस्त देश के हजारों श्रद्धालुओं में से लोगों के पाँच योग्य प्रतिनिधियों को चुनकर नियुक्त करना, उन्हें वोटों आदि के द्वारा नहीं चुनना। दूसरा सिद्धान्त था–समूची जिम्मेदारी अर्थात पावन गुरु ग्रंथ साहिब की हुजूरी में बैठकर केवल इन्हीं पाँचों प्यारों को अधिकार देना जिसके अधीन लिए गये फैसले सारी सिख कौम को पूरी तरह मानने होंगे।

गुरु जी ने खालसे की आत्मायें स्वतंत्र कर दीं और इनके हृदयों को धार्मिक और सामाजिक स्वंत्रतता और कौमी प्रगति के लिए एक ऊँची अभिलाषा के साथ भर दिया। सो, खालसे ने शक्तिशाली मुगल राज्य के अत्याचार से उपजे भय से जूझने की ललकार को स्वीकार कर लिया और स्वतंत्रता के लिए एक कौमी संग्राम में जुट गये।

भाई नंद लाल :

भाई नंद लाल गोया जिसका जन्म अफ़गानिस्तान में गज़नी में सन् 1643 में हुआ, फारसी का निपुण विद्वान था। उसने अकाल पुरुख और गुरु गोबिंद सिंह जी की महिमा में काव्य रचना की। उसकी आयु 19 वर्ष की भी नहीं हुई थी कि उसके माता–पिता का देहान्त हो गया और उसके बाद वह मुलतान में आकर बस गया। मुलतान का नवाब उसकी विद्ववता और व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ और उसे अपना 'मीर

मुंशी'(लगान अफसर) नियुक्त कर लिया। पैंतालीस वर्ष की उम्र में उसने नौकरी छोड़ दी और अपनी शान्ति की तलाश में निकल पड़ा। अन्त में वह आनंदपुर पहुँचा। वह गुरु जी को मानने से पहले गुरु जी की परीक्षा लेना चाहता था। उसने एक छोटा–सा घर लेकर उसमें चुपचाप रहना आरंभ कर दिया और मन में निश्चय किया कि वह गुरु जी के पास केवल उस समय जाएगा, जब वह उसे बुलायेंगे। कुछ समय तक गुरु जी की ओर से कोई बुलावा नहीं आया। इस दौरान नंद लाल बड़ा बेचैन हो गया, जिसका वर्णन उसने इस प्रकार लिखकर किया :

"और कितनी देर मैं सब्र करके प्रतीक्षा करुँगा ? मेरा हृदय तेरे दर्शन के लिए बेचैन है। गोया मेरी आँसुओं से भरी आँखें प्रेम की बाढ़ से भरी हुई नदियाँ हैं और तेरी ओर पुरजोश स्नेह में बह रही हैं।"

आखिर, गुरु जी ने नंद को बुलाया। जब वह उनके पवित्र दर्शन के लिए पहुँचा तो गुरु जी समाधि में नेत्र बंद करके बैठे हुए थे। जैसे ही, नंद लाल ने गुरु जी के दर्शन किये, वह आश्चर्यचकित रह गया और उसने लिखा :

"मेरी ज़िंदगी और श्रद्धा को उसके मीठे और अलौकिक चेहरे ने बंदी बना लिया है, बहिश्त और दुनिया की शानोशौकत की, उसकी सुनहरी छवि की एक बाल भर जितनी भी कीमत नहीं। आह! उसके प्यार की आकर्षण भरी दृष्टि में से निकल रही रोशनी को मैं कैसे सहन करुँ। उस प्यारे की एक झलक ही मेरी ज़िंदगी को कुलीन करके प्रकाशमय करने के लिए काफी है।"

"दीन दुनिया दर कमंदे आं परी रुखसारि मा।
हर दो आलम कीमते यक तारि मूए यारि मा।।
मा नमे आरेम ताबे गमज़ए मियगानि ऊ।
यक निगाहे जां फिज़ाइज़ बस बवद दरकारि मा।।"

कुछ समय बाद गुरु जी ने अपने नेत्र खोले और नंद लाल की ओर देखते हुए मुस्करा पड़े। केवल नेत्र खोलने के साथ ही गुरु जी ने नंद लाल को अकाल पुरुख के दर्शन करने योग्य बना दिया। उनकी मेहर के एक नूर ने नंद लाल की रूहानी आँखें खोल दीं। नंद लाल ने झुककर गुरु जी को नमस्कार किया और कहा, "पातशाह, मेरी सब शंकायें दूर हो गई हैं। मैं सत्य को जान गया हूँ। मेरे हृदय के द्वार खुल गये हैं और मुझे शान्ति नसीब हो गई है।"

इस प्रकार, नंद लाल ने गुरु जी की सेवा और उनके प्रेम में आनंदपुर में रहना जारी रखा। एक दिन गुरु जी ने हुक्म दिया, "नंद लाल, तू घर छोड़कर घर से विरक्त हो गया है, ऐसा त्याग मुझे परवान नहीं। वापस जाओ और संसार में जीवन व्यतीत करो, अपने लिए काम करो और मनुष्य जाति की सेवा करो, परन्तु माया (पदार्थवाद) से निर्लिप्त रहो, अकाल पुरुख को अपने हृदय में बसाये रखो।" नंद लाल ने पूछा, "मेरे मालिक, मैं कहाँ जाऊँ।" गुरु जी ने उत्तर दिया, "जहाँ तुम्हारे पैर तुम्हें ले जाएँ।"

भाई नंद लाल ने गुरु जी को झुककर नमस्कार किया और आनंदपुर से चल पड़ा। कुछ समय के बाद वह आगरा, ताज महल के शहर, पहुँचा, जहाँ शहजादा बहादुर शाह अपना दरबार लगाता था। वहाँ शहजादे की सरपरस्ती के अधीन कुछ कवि, विद्वान और कलाकार थे। जल्दी ही नंद लाल आगरा में एक महान विद्वान के तौर पर प्रसिद्ध हो गया जिसके कारण उसे शहजादे की ओर से एक ऊँची पदवी और बड़ी तनख्वाह मिल गई। कहा जाता है कि एक बार औरंगजेब को इरान के राजा को एक पत्र लिखना था और नंद लाल का बनाया पत्र बादशाह को सबसे अधिक उपयुक्त लगा। इस पर औरंगजेब ने नंद लाल को बुलवा लिया और मुलाकात करने के बाद उसने अपने दरबारियों से कहा कि बड़े अफसोस की बात है कि ऐसा विद्वान एक हिंदू है। औरंगजेब ने शहजादे बहादुर शाह से कहा कि नंद लाल को, अगर हो सके तो तर्क के साथ, नहीं तो जबरन मुसलमान बनाया जाए। यह खबर बाहर निकल गई और भाई नंद लाल अपने एक मुसलमान प्रशंसक और अनुयायी गियासुद्दीन की मदद से एक रात आगरा से बच निकला और आनंदपुर जा पहुँचा, जो कि अकेला ऐसा स्थान था जहाँ पर ऐसे शरणार्थियों को सुरक्षित आसरा मिल सकता था।

आनंदपुर में सतगुरु जी के चरणों में कृपा से भरे जीवन की खुशियों मनाते हुए भाई नंद लाल एक श्रद्धालू सिख की तरह नित्यकर्म करने लगा। उसने गुरु जी के लिए अकाल पुरुख की प्रशंसा में

'बंदगीनामा' नाम से एक फारसी की रचना भेंट की। गुरु जी ने इसका नाम बदलकर 'ज़िंदगीनामा' रख दिया। इसमें से एक उदाहरण इस प्रकार है :

"दोनों जहान, यह और इससे अगला, अकाल पुरुख के प्रकाश से भरे हुए हैं। सूरज और चन्द्रमा तो केवल सेवक हैं जिन्होंने अकाल पुरुख की मशालें थाम रखी हैं।कृ जो अकाल पुरुख की तलाश करते हैं, वह सदा भले हैं।"

नोट :

कुछ लोग कहने की कोशिश कर रहे हैं कि भाई नंद लाल जी ने अमृत नहीं छका, वरना उसका नाम नंद सिंह होता, नंद लाल के बजाय। इसलिए पाँच प्यारों से अमृत छकने की आवश्यकता नहीं। ये लोग जो ऐसा कहते हैं कि अमृत छकने की ज़रूरत नहीं, बिलकुल गलत है। क्यों ?

पाँच प्यारों से अमृत छकना यह गुरु धारण करने की एक रस्म है। दस गुरु साहिबान तक जब भी काई सज्जन गुरु साहिब का सिख बनना चाहता था तो उसको चरणामष्त पिलाया जाता था और 'शब्द' दिया जाता था, तब वह गुरु साहिब का सिख बनता था। खालसे की स्थापना के बाद यह गुरु धारण की प्रथा पाँच प्यारों के सुपुर्द कर दी गई।

जब तक आदमी गुरु धारण करके गुरु वाला नहीं बनता, तब तक वह निगुरा(गुरुहीन) है :

"सतिगुर बाझहु गुरु नहीं कोई निगुरे का है नाउ बुरा।"

(राग आसा महल्ला 3, पृष्ठ 435)

फिर, गुरबाणी का फरमान है :

"बिनु सतिगुर भेटे मुक्ति न कोई
बिनु सतिगुर भेटे नामु पाया न जाइ।"

(रामकली महल्ला 1, पृष्ठ 946)

नाम के बगैर मुक्ति नहीं हो सकती, पर नाम गुरु से मिलता है। गुरु से बगैर नाम नहीं मिल सकता।

"जुग चारे नामि वडिआई होई
जि नामि लागै सो मुक्ति होवै गुर बिनु नामु न पावै कोई।"

(रामकली महल्ला 3, पृष्ठ 880)

सो, गुरु के बगैर 'नाम' नहीं मिल सकता और 'नाम' के बगैर परम पद की प्राप्ति नहीं हो सकती।

1699 में खालसे की स्थापना से पहले भाई नंद लाल जी गुरु धारण करके दसवें पातशाह का सिख बने। यह भाई नंद लाल की अपनी रचना कहती है। इसी प्रकार अन्य, भाई घनैया जैसे प्रसिद्ध सिख गुरु साहिब से चरणामष्त लेकर दसवें पातशाह के सिख बने।

जब एक बार गुरु धारण कर लिया(चरणामष्त लेकर या पाँच प्यारों से अमृत छक कर) फिर दुबारा गुरु धारण करने की ज़रूरत नहीं; बशर्ते नियमों के खिलाफ कोई गलत काम न किया जाए।

अब गुरु साहिबान देह रूप में नहीं है इसलिए चरणामष्त की रस्म हो ही नहीं सकती। अब सिख धर्म में गुरु धारण की रस्म का सिर्फ एकमात्र तरीका है, वह है – पाँच प्यारों से अमृत छककर 'गुरु वाला' होना।

गुरबाणी में बार–बार कहा गया है कि गुरु के पास जाओ, गुरु के पास जाओ क्योंकि गुरु के बगैर 'नाम' नहीं मिलता और 'नाम' के बगैर परम पद की प्राप्ति नहीं हो सकती। अमृत छकाकर गुरु धारण करने और 'नाम' देने की अथारिटी सिर्फ पाँच प्यारों को गुरु साहिब ने दी है। सिख धर्म में अकेला व्यक्ति चाहे जितनी बड़ी पदवी पर पहुँचा हुआ हो, 'नाम' नहीं दे सकता। यह 'नाम' देने की शक्ति केवल पाँच प्यारों को ही गुरु साहिब ने बख्शी है।

पाँच प्यारों से अमृत छककर और 'नाम' लेकर कमाई करनी है। गुरु से प्राप्त 'नाम' (गुरु से लिया हुआ नाम) की कमाई के द्वारा ही व्यक्ति परम पद की प्राप्ति पर पहुँच सकेगा, वरना नहीं। इसलिए अमृत छकने की आवश्यकता है।

भाई जोगा सिंह :

अपनी युवावस्था के प्रारंभ में ही जोगा सिंह गुरु जी के दरबार में रह रहा था और एक महान श्रद्धालू था। एक दिन गुरु जी की नज़र उस पर पड़ी और उन्होंने उससे उसका नाम पूछा। उसने उत्तर दिया, "सच्चे पातशाह, मेरा नाम जोगा सिंह है।" गुरु जी ने पूछा, "तू किसके जोग(योग्य) है ?" उसने उत्तर दिया, "मैं गुरु के जोग हूँ।" इस पर गुरु जी ने उसके साथ इकरार किया, "अगर तू गुरु के जोग है तो गुरु तेरे जोग है।"

कुछ समय बाद जोगा सिंह अपने विवाह के लिए अपने घर पेशावर गया। अभी विवाह की रस्म आधी ही हुई थी कि एक आदमी गुरु जी की ओर से एक सन्देशा लेकर पहुँचा कि फौरन आनंदपुर पहुँचो। जोगा सिंह ने सन्देशा पढ़ा और फेरे पूरे किए बगैर ही आनंद कारज बीच में ही छोड़कर आनंदपुर की ओर चल पड़ा। उसके लिए गुरु जी का आदेश अन्य सभी कार्यों से ऊपर था। सच तो यह है कि भक्ति का मार्ग उस्तरे की धार से तेज और बाल की चौड़ाई से कम है।

जोगा सिंह आनंदपुर पहुँचने के लिए तेजी से सफ़र कर रहा था। लाहौर और अमृतसर पार करके वह होशियार पुर एक सराय में पहुँचा। रात में उसके स्वाभिमान ने सिर उठाया और वह सोचने लगा कि मेरी तरह और कौन ऐसा कर सकता था ? बहुत कम सिख होंगे जो मेरी तरह गुरु जी का हुक्म मानें। इस गुमान की भावना ने उसका पतन करा दिया। रात के समय काम वासना ने उस पर जोर डाला और वह एक वेश्या के घर की ओर चल पड़ा। जोगा सिंह ने गुरु जी द्वारा बख्शी गई वर्दी और दस्तार पहनी हुई थी और दाढ़ी रखी हुई थी। वेश्या के घर की ओर जाते हुए जोगा सिंह अपने आप से बातें करने लग पड़ा, "अगर मुझे किसी ने वेश्या के घर की ओर जाते हुए देख लिया तो यह गुरु जी का निरादर हो जाएगा। ऊपर से मैंने गुरु जी का बाना पहन रखा है। सो, मुझे वेश्या के घर में घुसते हुए कोई देख न ले।"

जैसे ही, वह वेश्या के घर के पास पहुँचा, वहाँ एक पहरेदार आ गया जो ऊँचे स्वर में कह रहा था, "खबरदार रहना!" जोगा सिंह वेश्या के घर में न घुस सका, सो अगली वाली गली की ओर चल पड़ा। इधर–उधर देखकर और सोचकर कि पहरेदार आगे निकल गया होगा, वह तेज कदमों से वेश्या के घर की तरफ आया। वह यह देखकर हैरान हो गया कि पहरेदार फिर से आ निकला था, ऊँची आवाज में पुकारता, "जागते रहना भाई।" जोगा सिंह यह सहन नहीं कर सकता था कि कोई उसे वेश्या के घर में जाते हुए देखे क्योंकि वह गुरु जी द्वारा बख्शी हुई वर्दी में था और उसका यह कार्य गुरु जी को कलंकित करेगा। आखिर, कुछ देर तक कोशिश करने के बाद असफल रहने पर उसने इस बुरे काम को करने का इरादा छोड़ दिया।

अगली सुबह वह आनंदपुर की ओर चल पड़ा और वहाँ पहुँचकर गुरु जी की हुजूरी में सिर झुका कर खड़ा हो गया। गुरु जी ने उसकी और उसके परिवार की कुशलक्षेम पूछी। लेकिन जोगा सिंह चुपचाप खड़ा रहा। तब दिव्य गुरु जी ने उससे कहा, "जोगा सिंह तुझे याद है न कि जब तूने कहा था कि तू गुरु के जोग है तो गुरु ने इकरार किया था कि अगर तू गुरु के जोग है तो गुरु तेरे जोग है।" गुरु जी ने यह भी बताया, "एक पहरेदार के भेष में पिछली रात हमने होशियारपुर की गलियों में तेरी रक्षा की थी और तुझे बदनामी से बचाया था।" जोगा सिंह गुरु जी के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा बख्शने के लिए विनती करने लगा।

ऐसे थे गुरु जी के कौतुक। एक बार यदि हम उनके प्रति गहरी श्रद्धा रखें तो वे भी हमें नहीं भूलेंगे। गुरु जी स्वयं इसकी पुष्टि करते हैं :

"जब तक खालसा रहे न्यारा,
तब लग तेज दीउ मैं सारा।
जब इह गहै बिपरन की रीत,
मैं न करों इनकी प्रतीत।"

(गुरु गोबिंद सिंह जी)

खालसा की स्थापना के बाद के समय में कार्य :

पहाड़ी राजा, कहिलूर के राजा सहित गुरु जी के पास आए और खालसा स्थापना संबंधी सम्भावनाओं और परिणामों पर काफी विचार–विमर्श किया। गुरु जी ने उन्हें अपने देश को गिरती हालत से ऊपर उठाने के लिए खालसा धर्म को अपनाने का उपदेश दिया। पहाड़ी राजा खालसा धर्म धारण करने की सलाह माने बिना वापस चले गये।

खालसा की स्थापना का तुरन्त प्रभाव यह पड़ा कि पहाड़ी राजाओं ने इसे अपने धर्म और अपनी राजसत्ता के लिए एक तगड़ा खतरा समझा। गुरु जी ने अपने सिखों को जहाँ भी वे रहते थे, आदेश भेजा कि वे सभी आनंदपुर आकर अमृत छकें और खालसा पंथ में प्रवेश करें। सो, बहुत बड़ी संख्या में गुरसिख गुरु जी को श्रद्धांजलि देने के लिए आनंदपुर में आने शुरू हो गये और अमृत छकने लगे। इस प्रकार अमृतधारी सिखों की बढ़ रही संख्या, समानता की भावना से ओतप्रोत होकर और सनातनी जीवन व्यवहार से मुक्त होकर हर समय दुष्टता के विरुद्ध लड़ने–मरने को तत्पर दिखती थी। इसने पहाड़ी राजाओं को भयभीत कर दिया क्योंकि वे इसे अपनी जागीरदारी और अपने सनातनी जीवन व्यवहार के लिए एक सीधी चुनौती समझते थे।

एक दिन गुरु जी दून वादी में शिकार खेलने के लिए चले गये। बलिया चंद और आलिम चंद दो पहाड़ी रजवाड़ों ने गुरु जी की टोली पर हमला बोल दिया। गुरु जी के साथ बहुत कम सिख थे। दोनों दल बहादुरी से लड़े। आलिम चंद ने अपनी तलवार का वार आलिम सिंह पर किया जिसने उसे अपनी ढाल पर रोक लिया और अपने जवाबी वार में आलिम चंद की दायीं बांह काट दी। वह किसी तरह भाग खड़ा हुआ और पीछे बलिया चंद को अपने दल की कमान के लिए अकेला छोड़ गया। पर बलिया चंद को उदय सिंह ने गोली मारकर मार दिया। पहाड़ी सेना ने जब अपने एक मुखिया को मरते और दूसरे को भागते देखा तो वह रणक्षेत्र छोड़ गई जिससे गुरु जी के दल की विजय हुई।

आनंदपुर का प्रथम युद्ध :

इस पराजय के बाद पहाड़ी राजाओं ने सोचा कि यदि सिखों की शक्ति और उनकी संख्या इसी प्रकार बढती गई तो यह बहुत ही खतरनाक होगा। इसलिए उन्होंने मिलकर फैसला किया कि सिखों के विरुद्ध दिल्ली सरकार में शिकायत की जाए। औरंगजेब अभी भी दक्खिन में व्यस्त था। दिल्ली के सूबेदार ने जरनैल दीन बेग और जरनैल पैदे खान को पाँच–पाँच हजार की सेना के साथ भेजा कि गुरु जी को पहाड़ी राजाओं के हकों में दख़ल देने से रोका जाए। जब शाही फौजें रोपड़ पहुँचीं तो पहाड़ी राजा साथ में मिल गये।

गुरु जी ने पाँच प्यारों को अपनी सेना का जरनैल नियुक्त किया। सिख इतिहासकार बताते हैं कि जब आनंदपुर में युद्ध प्रारंभ हुआ तो सिखों की ओर से की गई निरन्तर और भयानक गोलाबारी से तुर्क भून दिए गये। जरनैल पैदे खान ने सिखों की ओर से जबरदस्त मुठभेड़ होती देखी तो अपने सैनिकों को ललकार कर कहा कि काफिरों के साथ जान की बाजी लगाकर लड़ो! वह स्वयं गुरु जी के साथ अकेले हाथ लड़ने के लिए आया और गुरु जी को पहला वार करने के लिए आमंत्रित किया। गुरु जी ने इस तरह हमलावर बनने से इन्कार कर दिया और बताया कि उन्होंने प्रतिज्ञा की हुई है कि वह अपने बचाव के सिवा कभी वार नहीं करेंगे। इस पर पैदे खान ने एक तीर छोड़ा जो गुरु जी के कान के पास से सांय–सांय करता निकल गया। उसने एक और तीर छोड़ा और वह निशाना भी व्यर्थ गया। पैदे खान का पूरा शरीर कानों को छोड़कर ज़िरिह–बख्तर से ढंका हुआ था। यह जानते हुए गुरु जी ने एक तीर उसके कान की ओर ऐसे अचूक निशाने से मारा कि पैदे खान अपने घोड़े से धरती पर आ गिरा और फिर कभी न उठ पाया। इसके साथ ही युद्ध समाप्त हो गया। दीन बेग ने सारी सेना की कमान संभाली। पैदे खान की मौत से पागल होकर उसकी सेना बड़ी ताकत से लड़ी, पर सिखों की मजबूत स्थिति पर कोई प्रभाव न डाल सकी। लेकिन, दूसरी ओर सिखों ने दुश्मनों की खूब तबाही मचाई। पहाड़ी राजा रणक्षेत्र छोड़ गये। तभी

दीन बेग ज़ख्मी हो गया और भाग खड़ा हुआ, पर सिखों ने उसे रोपड़ (चंडीगढ़ के निकट खिदराबाद गाँव, जहाँ इस याद में एक गुरद्वारा है) तक पीछा किया। यह युद्ध सन् 1701 के आरंभ में शुरू हुआ।

आनंदपुर का दूसरा युद्ध :

जम्मू, नूरपुर, मंडी, भुटान, कुल्लू, कैथल, गुलेर, चम्बा, श्रीनगर, डढ़वाल, हंडूर के राजाओं के साथ–साथ अन्य पहाड़ी राजा बिलासपुर में एकत्र हुए, नई पैदा हुई स्थिति पर विचार करने के लिए। कहिलूर के राजा अजमेर चंद(स्वर्गीय राजा भीम चंद का पुत्र) ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा कि वे गुरु जी की बढ़ रही शक्ति को आँखों से ओझल करेंगे तो गुरु जी एक दिन हमें हमारे राज्यों से निकाल देंगे। दूसरा, अगर वे बार–बार मुगल राज दिल्ली की सहायता मांगेंगे तो उन्हें मुगल हमेशा के लिए अपने अधीन कर लेंगे। इसलिए यह निर्णय हुआ कि वे स्वयं ही अपनी रक्षा करें। यदि सभी पहाड़ी राजा अपनी–अपनी सेना का एक उचित हिस्सा डालें तो वे एक बड़ी फौज इकट्ठी कर लेंगे, जो गुरु जी और उनके सिखों का सर्वनाश करने के लिए काफी होगी। इस प्रकार एक सादी और संभव तरकीब यह सोची गई कि गुरु जी की राजधानी आनंदपुर को चारों ओर से घेर लिया जाए और उसमें रह रहे लोगों को भूखा रखकर उन्हें उनकी अधीनगी स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया जाए।

इस फैसले के अनुसार सभी राजा अपने–अपने सैन्य दल लेकर आए और उन्होंने आनंदपुर की ओर कूच कर दिया। शहर के करीब पहुँचे तो उन्होंने गुरु जी को एक पत्र भेजा जिसमें लिखा था, "आनंदपुर की धरती हमारी अपनी है। हमने आपके पिता को यहाँ रहने की आज्ञा दी थी और उन्होंने कभी कोई लगान अदा नहीं किया। अब आप ने एक नया धर्म चला लिया है जो हमारे धर्म के विरुद्ध है। हमने अब तक यह सब बर्दाश्त किया है, पर अब और इसको आँखों से ओझल नहीं कर सकते। हमारी धरती पर रहने की एवज में पिछला बकाया लगान अदा करो और इकरार करो कि भविष्य में इसे बाकायदा अदा करते रहोगे। अगर आप इन शर्तों को मानने से इन्कार करते हैं तो आनंदपुर छोड़कर जाने की तैयारी करो या इसके नतीजे के लिए तैयार हो जाओ।"

गुरु जी ने उत्तर दिया, "यह धरती मेरे पिता जी ने खरीदी थी और इसकी कीमत अदा कर दी थी। अगर तुम मेरे से आनंदपुर छुड़वाना चाहते हो तो तुम इसे गोलियों से ही ले सकोगे। मेरी सुरक्षा में आ जाओगे तो तुम दोनों जहानों में सुखी रहोगे। यह वक्त है समझौता कर लेने का। मैं तुम्हारे और खालसा के बीच एक बिचौला होऊँगा। तब तुम अपनी रियासतों पर निडर होकर राज्य करते रहोगे।"

अब राजाओं को साफ दिखाई देता था कि गुरु जी इस तरह नहीं मानेंगे। अगली सवेर उन्होंने युद्ध का नगाड़ा बजा दिया। जैसा कि यह आम था, रंघड़ों और गुजरों की बहुत भारी संख्या पहाड़ी राजाओं की ओर जा मिली।

माझा के इलाके में से दुनी चंद की कमान के अधीन पाँच सौ लोग गुरु जी की सेना में आ मिले और इस अवसर पर दूसरी जगहों से भी अतिरिक्त कुमुक आ पहुँची। वहाँ दो प्रमुख किले[5] लौहगढ़ और फतहगढ़ थे। गुरु जी ने अपनी सेना को हुक्म दिया कि वे शहर से आगे न बढ़ें और जहाँ तक संभव हो, अपने बचाव के लिए लड़ें। शेर सिंह और नाहर सिंह को लौहगढ़ की रक्षा के लिए कमान दी गई और फतहगढ़ को उदय सिंह के सुपुर्द किया गया। साहिबजादा अजीत सिंह ने पिता जी से उदय सिंह की सहायता के लिए आज्ञा मांगी।

पहाड़ी राजाओं ने बड़ी तोपों के साथ गुरु जी के किले पर गोलाबारी की। कई सिखों ने दृढ़ता के साथ शत्रुओं का सामना किया और उन्हें पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया। तब दुश्मन फौजों के प्रमुखों ने एक संक्षिप्त–सी बैठक की और फैसला किया कि जसवाल का दबदबे वाला राजा केसरी चंद किले के दायीं ओर से हमला करे और जगतुल्ला बायीं ओर से। जबकि अजमेर चंद ने स्वयं और उसकी सेना ने आनंदपुर पर सामने की ओर से हमला किया। जगतुल्ला को साहिब सिंह ने गोली मारकर मार गिराया और सिख, दुश्मनों को उसकी लाश को ले जाने देने के लिए पीछे न हटे। कांगड़े के राजा घुमंड चंद ने अपनी सेना को एकत्र करके फिर से हमला किया, पर सिखों को पीछे हटाने में सफल न हो सका। युद्ध के

नतीजे से पहाड़ी राजा बहुत निराश हुए और रात के समय उन्होंने अपनी जंगी बैठक की। राजा अजमेर चंद ने गुरु जी के साथ सुलह कर लेने की सलाह दी और कहा कि गुरु जी गुरु नानक साहिब की इलाही गद्दी पर बैठे हुए हैं और उनसे एक याचक के तौर पर मांगने में कोई अपमान नहीं होगा। बहुत से राजा इस तजवीज़ को मान गये, पर जसवाल का केसरी चंद सुलह करने का विरोधी रहा और उसने इकरार किया कि अगले दिन और अधिक डटकर लड़ा जाएगा ताकि गुरु जी को आनंदपुर में से निकाल दिया जाए।

अगले दिन पहाड़ी राजा अपनी फौजों को केन्द्रित कर शहर के केवल एक खास हिस्से पर हमला करने के लिए राजी थे, पर सिखों ने फिर वीरता के साथ सामना किया। पहाड़ी सेना ने बहुत बार मिलकर एक साथ हमला किया, पर शूरवीर सिखों को वे जीत न सके और यही फैसला किया गया कि शहर की नाकाबंदी की जाए जो कि कुछेक हफ्ते ही चली। जैसे ही नाकाबंदी सफलता से चलती गई, राजा केसरी चंद ने एक हाथी को शराब पिलाकर तैयार किया, शहर पर हमला करने के लिए। हाथी का सारा शरीर ज़िरिह–बख्तर से ढक दिया गया। हमला करने के लिए एक मजबूत नेजा उसके माथे पर लगा हुआ था। उस मस्त हाथी को लौहगढ़ के किले की ओर दौड़ा दिया गया और पहाड़ी सेना उसके पीछे–पीछे चलने लगी। गुरु जी ने अपने सिख बचित्र सिंह को उस हाथी का सामना करने के लिए कहा। बचित्र सिंह ने उस भंयकर पशु का सामना करने के लिए एक बरछा लिया। उसने अपना बरछा[6] ऊपर उठाकर इतने जोर से हाथी के माथे पर मारा कि वह ज़िरिह बख्तर को चीरकर हाथी में माथे में घुस गया। हाथी चिंघाड़ता हुए पीछे की ओर दौड़ पड़ा और उसने पहाड़ी सेना के कई सैनिकों को कुचलकर मार डाला। इसी दौरान, उदय सिंह केसरी चंद की ओर बढ़ता गया और उसने उसे ललकार कर एक ही वार से उसका सिर काट दिया। पाँच प्यारों में भाई मोहकम सिंह ने अपनी तलवार के एक वार से मस्त हाथी की सूंड काट दी। बची हुई पहाड़ी सेना भाग खड़ी हुई। पीछे भाग रहे हंडूर के राजा को भाई साहिब सिंह ने गम्भीर रूप से ज़ख्मी कर दिया।

अगले दिन कांगड़ा के राजा घुमंड चंद ने अपनी सेना को शहर के विरुद्ध लड़ने का हुक्म दिया। घुमंड चंद का घोड़ा आलिम सिंह की बन्दूक की गोली से मारा गया। युद्ध घटती–बढ़ती सफलता के साथ शाम तक चला। संध्या के समय अपने तम्बू की ओर जाते हुए घुमंड सिंह अचानक आई एक गोली से बुरी तरह ज़ख्मी होकर मरणासन्न् स्थिति में पहुँच गया। अब सभी पहाड़ी राजाओं के दिल टूट गये और वे हौसला छोड़ बैठे। राजा अजमेर चंद सबसे बाद में आनंदपुर से लौटा और आधी रात के अंधेरे में घर की ओर कूच कर गया। यह युद्ध सन् 1701 में हुआ।

निर्मोह का युद्ध :

अजमेर चंद पहाड़ी सेनाओं की हार के बावजूद गुरु जी को आनंदपुर से बाहर निकाल देने के लिए दृढ़ था। उसने सिखों के विरुद्ध शिकायत करने के लिए अपना एक दूत मुगल बादशाह के सरहिंद के सूबेदार के पास और दूसरा दूत दिल्ली के सूबेदार की ओर भेजा। और साथ ही, गुरु जी की शक्ति को खत्म करने और उन्हें आनंदपुर से निकाल देने के लिए पहाड़ी राजाओं की मदद करने का अनुरोध लेकर भी।

इसके साथ ही पहाड़ी राजाओं ने अपना मुँह रखने के लिए पम्मा ब्राह्मण की मार्फत गुरु जी के पास यह तजवीज़ भेजी कि वे गुरु जी के साथ हमेशा–हमेशा के लिए मित्रता बनाए रखेंगे यदि वे आनंदपुर छोड़ जाएँ और कुछ समय बाद बेशक वापस आ जाएँ। गुरु जी इस तजवीज़ को मान गये और कीरतपुर से एक मील की दूरी पर निर्मोह गाँव में चले गये। जब गुरु जी निर्मोह पहुँचे तो राजा अजमेर चंद और कांगड़ा के राजा ने सोचा कि गुरु जी अब खुली जगह पर हैं और उनके पास सुरक्षा के लिए कोई किला भी नहीं है, अतः यह अच्छा रहेगा कि गुरु जी पर हमला कर दिया जाए। उन्होंने शाही फौजों के पहुँचने की प्रतीक्षा करने से भी पहले गुरु जी की सेना पर हमला बोल दिया। एक गम्भीर युद्ध हुआ जिसमें अन्त में सिख जीत गये। एक दिन दोपहर के बाद गुरु जी अपने खुले दरबार में बैठे हुए थे कि पहाड़ी राजाओं द्वारा एक मुसलमान तोपची को काफी रकम देने का लालच देकर गुरु जी को मार देने के लिए बुलाया

गया। तोपची ने तोप का एक गोला छोड़ा जो गुरु जी को तो नहीं लगा, पर जो सिख गुरु जी पर चंवर झुला रहा था, वह मर गया। गुरु जी ने अपना तीर–कमान उठाया और एक तीर से तोपची और दूसरे से उसके भाई जो तोपची की मदद कर रहा था, को मार गिराया। यह देखकर पहाड़ी राजाओं ने लड़ना छोड़ दिया। दोनों मुसलमानों को उसी जगह पर दफना दिया गया जिसे 'स्याह टिब्बी' कहा जाता है। जिस स्थान पर गुरु जी बैठे हुए तोप के गोले से बच गये थे, वहाँ सिखों ने इस स्मृति में एक गुरद्वारा बनाया।

सरहिंद के सूबेदार वज़ीर खान की फौज समय से आ पहुँची। एक ओर पहाड़ी राजा और दूसरी ओर शाही फौज, बीच में गुरु जी एक बड़ी खतरनाक स्थिति में आ गये। पर गुरु जी ने अपनी रक्षा जैसे–तैसे करने का इरादा कर लिया और सिखों ने पूरे भरोसे और शूरवीरता के साथ गुरु जी का साथ दिया। वज़ीर खान ने अपनी फौज को हुक्म दिया कि अचानक तेजी से आगे बढ़े और गुरु जी को काबू में कर ले। गुरु जी की उनके साहिबजादे अजीत सिंह और दूसरे शूरवीरों ने बड़ी सफलता के साथ रखवाली की। इन्होंने शाही फौजों को आगे बढ़ने से रोक दिया और उनकी कतारों की कतारें मार गिराईं। यह कत्लेआम रात तक चलता रहा। अगले दिन जब गुरु जी ने बसोली लौट जाने का फैसला किया, शाही फौज और पहाड़ी राजाओं ने गम्भीर हमला कर दिया दिया। बसौली के राजा ने गुरु जी को अपनी राजधानी में आने के लिए कई बार निमंत्रण दिया था। जब तक गुरु जी की सेना दरिया सतलुज पहुँची, कड़ा युद्ध होता रहा जिसमें शूरवीर भाई साहिब सिंह मारा गया। अपने अंगूठे को दांतों से काटते हुए वज़ीर खान मान रहा था कि उसने इससे पहले कभी ऐसी सिरकाट लड़ाई नहीं देखी थी। गुरु जी अपनी सेना सहित दरिया पार कर गये और बसोली आ पहुँचे। पहाड़ी राजा बहुत खुश हुए और उन्होंने वज़ीर खान को हाथी भेंट किये। पहाड़ी राजा अपने–अपने घर लौट गये और वज़ीर खान सरहिंद लौट गया। यह युद्ध सन् 1701 के अन्त में हुआ।

दया सिंह और उदय सिंह ने गुरु जी से आनंदपुर वापस लौट चलने के लिए विनती की। गुरु जी कुछ दिन बसोली में ठहरकर आनंदपुर की ओर चल दिये और आनंदपुर वासी गुरु जी को अपने पास वापस आया पाकर बहुत खुश हुए। गुरु जी को फिर से आनंदपुर में पक्के तौर पर स्थित हुआ देखकर राजा अजमेर चंद ने शान्ति का रास्ता पकड़ने में ही समझदारी समझी। गुरु जी ने अजमेर चंद से कहा कि वे उसके साथ समझौता करने के लिए तैयार हैं, पर अगर वह फिर धोखेबाजी का दोषी बना तो गुरु जी उसे दंड देंगे। अजमेर चंद गुरु जी के साथ शान्ति समझौता करके खुश हो गया और उसने अपने परिवार के पुरोहित को गुरु जी के पास तोहफे लेकर भेजा। शेष पहाड़ी राजाओं ने भी अजमेर चंद की तरह किया और गुरु जी के साथ अच्छे संबंध बना लिए।

इसके बाद गुरु जी सिख धर्म के प्रचार के लिए मालवे गये। जनवरी 1703 में गुरु जी सूर्य ग्रहण के मेले पर कुरुक्षेत्र में गये। वहाँ वह पिछली जंग में मारे गये या चोरी हो गये घोड़ों की जगह और नये घोड़े खरीदने के लिए गये थे। गुरु जी के समय में ही मेलों में घोड़े और अन्य पशु बेचने या बदले में लेने–देने का रिवाज प्रचलित था।

दो जरनैल सैयद बेग और आलिफ खान लाहौर से दिल्ली जा रहे थे। राजा अजमेर चंद जो दूसरे पहाड़ी राजाओं के साथ कुरुक्षेत्र में आया हुआ था, ने इन जरनैलों की सहायता लेने की बात सोची। उसने इनको बड़ी रकम देने का वायदा किया ताकि वे गुरु जी पर हमला कर दें। पर सैयद बेग ने गुरु जी के संबंध में भली बातें सुन रखी थीं। सो, उसने अपनी फौज पीछे हटा ली। जब गुरु जी और आलिफ खान की फौजों के बीच चमकौर में लड़ाई छिड़ी तो सैयद बेग गुरु जी की सेना में आ मिला था। इस पर आलिफ खान ने यह सोचकर कि अब जीत सम्भव नहीं, उसने लड़ाई बीच में ही छोड़ दी। गुरु जी आनंदपुर लौट आये। सैयद बेग गुरु जी से मिलकर उसके साथ ही आनंदपुर आ गया और उनके पास ही एक भरोसेमंद और बलवान मित्र के तौर पर रहा।

दो वर्ष की शान्ति के बाद वैर–विरोध फिर से उठ खड़ा हुआ। इसका कारण था गुरु जी का बढ़ रहा प्रताप और इस कारण से पहाड़ी राजाओं और सिखों के बीच होने वाली झड़पें।

आनंदपुर का तीसरा युद्ध :

उस समय आनंदपुर में गुरु जी की सेना में केवल 800 सिख थे। राजा अजमेर चंद ने अपने साथी हंडूर, चम्बा और फतहपुर के राजाओं को आमंत्रित किया, गुरु जी को सबक सिखाने के मंतव्य से। उन सभी ने तुरन्त काम कर लेने के लिए अपनी रजामंदी दर्शायी क्योंकि आनंदपुर की पिछली लड़ाइयों के समय सिख किले के मोर्चे के पीछे रहकर लड़े थे, जबकि अब उनसे सामना खुले मैदान में हुआ। हमेशा की भांति सिख साहस और दृढ़ता के साथ लड़े। पहाड़ी राजा किसी भी तरह से सफल न हो सके और निराश होकर युद्ध छोड़कर चले गये। यह युद्ध सन् 1703 में हुआ था।

आनंदपुर का चौथा युद्ध :

पहाड़ी राजाओं की ओर से बार–बार दरख्वास्तें आने के कारण बादशाह ने जरनैल सैयद खान की कमान के तहत बहुत बड़ी फौज गुरु जी को वश में करने के लिए भेजी। सैयद खान सधौरे के पीर बुधू शाह का भान्जा था और पीर ने गुरु जी के साथ भंगाणी के युद्ध में लड़ाई की थी। आनंदपुर जाते हुए राह में सैयद खान पीर बुधू शाह से मिला। उससे गुरु जी के बारे में अच्छा–अच्छा सुना तो उसने गुरु जी से मिलना चाहा।

यह मार्च 1704 का अन्तिम और फसलें काटने का समय था जिस कारण गुरु जी के बहुत सारे सिख अपने घरों को गये हुए थे। सो, गुरु जी के पास केवल पाँच सौ सिखों की सेना रह गई थी। इसी के साथ गुरु जी ने अधिक से अधिक सुरक्षा का प्रबंध करना था। मैमन खान जो गुरु जी से प्रेम से जुड़ा एक धर्मी मुसलमान था, ने गुरु जी से आज्ञा मांगी– अपनी बहादुरी दिखाने के लिए। शूरवीर और ईमानदार सैयद बेग भी गुरु जी की सेवा के लिए आगे आया। दोनों मुसलमान शेरों की भांति लड़े और पीछे–पीछे सिख सेना।

सिख शत्रु की ओर शूरवीरता के साथ आगे बढ़े। सैयद बेग राजा हरी चंद के साथ अकेले भिड़ गया। बार–बार एक दूसरे का निशाना चूक जाने के बाद सैयद बेग ने आखिर में एक ऐसा वार किया कि हरी चंद का सिर काट दिया। यह देखकर शाही फौज का दीन बेग फुर्ती के साथ सैयद बेग की ओर बढ़ा और उसे उसने गम्भीर तौर पर ज़ख्मी कर दिया। मैमन खान अपने घोड़े पर सवार होकर चारों ओर धावा बोल रहा था और उसने शाही फौजों में भारी तबाही मचा दी थी। गुरु जी जरनैल सैयद खान के दिल की बात जानते थे। दिखावे के तौर पर वे धावा बोलते हुए सैयद खान की ओर बढ़े। गुरु जी के दर्शन करने की लालसा पूरी हो जाने पर सैयद खान अपने घोड़े पर से उतरा और गुरु जी के चरणों में ढह गया। गुरु जी ने उस पर सच्चे 'नाम' की बख्शीश की।

जब सैयद खान ने शाही फौज छोड़ दी थी, तब रमज़ान खान ने फौज की कमान संभाली। रमज़ान खान बड़ी ही बहादुरी के साथ सिखों के विरुद्ध लड़ा। गुरु जी ने एक तीर से रमज़ान खान के घोड़े को मार दिया। सिखों ने इकट्ठा होकर शूरवीरता के साथ दुश्मन का सामना किया, पर गिनती में बहुत ही कम होने के कारण शाही फौजें उन पर हावी हो गईं। जब गुरु जी ने देखा कि जीत की संभावना नहीं है, उन्होंने आनंदपुर छोड़ देने का फैसला कर लिया। उनके चले जाने के बाद पीछे से मुसलमान फौज ने शहर को लूट लिया। लूट का माल लेकर फौज वापस सरहिंद की ओर चल पड़ी। जब शाही फौज रात के समय आराम कर रही थी तो सिखों ने अचानक हमला कर दिया। शत्रु के दल में अफरा–तफरी मच गई। सिखों का सामना करने वाले तुर्क मारे गये और गुरु जी की इस प्रकार पीछा कर रही सेना के क्रोध से वही बचे जो भाग गये थे। सिखों ने शाही फौजों से आनंदपुर से लाया गया लूट का माल भी छीन लिया। इसके बाद गुरु जी आनंदपुर लौट आये।

आनंद पुर का पाँचवा युद्ध :

बादशाह ने अपनी फौजों से उनकी इस तरह की बुज़दिली की जवाबदेही मांगी। फौजों ने दलील दी कि सिखों ने जंग के मैदान में अपनी जगह का नाजायज़ फायदा उठाया था। एक नुक्ते पर बादशाह ने पूछा कि गुरु किस तरह का इन्सान है और उसके पास कितनी फौज थी ? एक मुसलमान फौजी ने गुरु जी की खूबसूरती, पावनता और बहादुरी की बहुत ही रंगीन तस्वीर पेश की। उसने बताया कि गुरु जी एक जवान खूबसूरत आदमी, एक जिन्दा दरवेश, अपने लोगों का पिता और जंग में एक लाख पच्चीस हजार (सवा लाख) आदमियों के बराबर बहादुर व्यक्ति है। बादशाह इस प्रकार विस्तार से दी गई गुरु जी की प्रशंसा सुनकर बहुत ही नाखुश हुआ और उसने हुक्म दिया कि गुरु जी को उसके सामने पेश किया जाए। इतने में राजा अजमेर चंद ने बादशाह के पास एक सख्त अर्जी दी कि गुरु जी को अपने अधीन करने के लिए सहायता की जाए।

कुछ श्रद्धालू सिखों ने राजा अजमेर चंद की तरफ से बादशाह को दी गई दरख्वास्त के फलस्वरूप हो रही जंगी तैयारियों की खबर गुरु जी को दी। गुरु जी ने उसी अनुसार प्रबंध किये और अपने सिखों को बुला लिया। माझा, मालवा और दुआबा के इलाकों और अन्य स्थानों से सिख उमड़कर आनंदपुर पहुँचे। वे जंग की संभावना देखकर खुश हुए और अपने गुरु जी और धर्म के वास्ते मरने के लिए दिए गये अवसर को अपनी खुशकिस्मती मानकर अपने आप को बधाइयाँ देने लगे। गुरु जी ने दृढ़ करवाया कि अपने धर्म के नाम पर रणक्षेत्र में मरना बहुत सारे वर्षों की भक्ति के फल के बराबर है और अगले जगत में मान और तेज–प्रताप दिलाता है।

इस सारे प्रसंग में ध्यान देने योग्य बिन्दु यह है कि गुरु जी ने जंगों में जीत के बाद कभी एक इंच इलाके पर भी अपना कब्ज़ा नहीं किया, न कभी किसी के साथ दुश्मनी पाली और न ही कभी किसी पर पहले हमला किया। खालसा की स्थापना करके उन्होंने मनुष्य जाति में समानता और भाईचारे का भाव स्थापित किया। समाज के दबे–कुचले वर्ग, जिन्हें ऊँची जाति के ब्राह्मण और क्षत्रिय सदैव ताना मारते थे, अब गुरु जी से अमृत छककर और खालसा पंथ में प्रवेश करके बेखौफ सन्त–सिपाही बन गये थे। ब्राह्मण और पहाड़ी राजा इसे अपने अस्तित्व के लिए खतरा समझते थे। इसी कारण वे गुरु जी और उनके सिखों के विरुद्ध लगातार जंग करते रहते थे।

जिन पहाड़ी राजाओं ने गुरु जी के विरुद्ध अपना गुट बनाया था, वे थे–कहिलूर का राजा अजमेर चंद, और कांगड़ा, कुल्लू, कैथल, मंडी, जम्मू, नूरपुर, चम्बा, गुलेर, गढ़वाल, बीझरवाल, डरौली और डढ़वाल के राजा। उनके साथ इलाके के गूजर और रंघड़ भी मिल गये और इन सभी ने एक बहुत बड़ी तगड़ी फौज बना ली। सरहिंद, लाहौर और कश्मीर के सूबेदारों की शाही फौज भी बड़ी संख्या में आ गई। इतिहासकार न्यायसंगत ढंग से विचार देता है कि खालसे को बधाई देना ज़रूरी हो जाता है कि वे बेशक संख्या में कम थे, पर अपने गुरु जी से बख्शीशें मिली होने के कारण, अपने धर्म की खातिर जूझने में पूरा स्व–विश्वास रखते थे और आने वाले युद्ध की प्रतीक्षा करके खुश होते थे। इतिहास में उल्लेख है कि आनंदपुर में दस हजार सिख (सैनिक) थे जब कि विरोधी फौज संख्या में सिखों से पन्द्रह से बीस गुणा अधिक थी।

शाही फौजों ने आनंदपुर पर टिड्डी दल की तरह हमला कर दिया। यह देखकर गुरु जी ने अपने तोपचियों को आदेश दिया कि दुश्मन फौज के सबसे अधिक घने हिस्सों पर तोपें दागें। दुश्मनों ने तोपखाना अपने कब्ज़े में लेने के लिए हल्ला बोला, पर जिस घातक अचूक निशाने से सिखों ने तोपें चलाईं, उसने दुश्मन की फौजों को तुरन्त ही रोक दिया। तोपचियों की सहायता सिखों की अपनी पैदल सेना भी कर रही थी। आनंदपुर शहर ऊँचाई पर था और विरोधी फौजें खुले मैदान में, बगैर किसी ओट या सुरक्षा के, जिसके फलस्वरूप शत्रु फौज के सिपाही ढेरों की तादाद में मारे गये। यह भयानक युद्ध कुछ दिनों तक चलता रहा।

मुसलमान तोपचियों को बड़ी रकम इनाम के तौर पर देने का वायदा किया गया था, अगर वे गुरु जी को मार दें, पर वे सफल न हुए, क्योंकि उनकी तोपों के गोले या तो बहुत ऊपर चले जाते थे, या बहुत नीचे रह जाते, जिसके कारण निशाना चूक जाता था। अपनी तोपों को बेकार होता देख दुश्मन फौजों ने आमने–सामने हाथ का युद्ध करने की कोशिश की। यह देखकर गुरु जी ने अपने तीरों की बौछार शुरू कर दी, जिसने कमाल का असर किया। भयानक कत्लेआम जारी रहा, घोड़ों पर घोड़े गिरे और फौजियों पर

फौजी। विरोधी फौजों ने युद्ध जीतने के लिए मिलकर एक तगड़ा जोर लगाया, पर वे उससे अधिक जोर और सफलता के साथ पीछे धकेल दी गईं और दिन छिपने पर वे लड़ना बन्द कर देने के लिए विवश हो गईं।

सिखों की सफलता के बारे में मुसलमानों और पहाड़ी राजाओं के विचार भिन्न–भिन्न थे। कुछ तो सोचते थे कि गुरु जी के पास उच्च दर्जे की करामाती शक्ति है और उनकी ओर से दैवी शक्तियाँ लड़ाई करती हैं। दूसरों का विचार था कि गुरु जी की कामयाबी इस कारण है कि सिख किले की चारदीवारी के पीछे सुरक्षित हैं। जब यह बहस चल रही थी तो मुसलमान सूबेदारों ने फैसला किया कि जिस किले में गुरु जी हैं, उस पर सीधी चढ़ाई की जाए। यह देखकर सिखों ने अपनी दो तोपें– 'बाघिन' (शेरनी) और 'बिजै घोष'(विजय घोष) युद्ध में उतार लीं। दोनों का मुँह दुश्मन की फौजों की ओर करके गोलाबारी शुरू कर दी गई। शत्रु के तम्बू उड़ा दिये गये और भारी तबाही मचा दी गई। यह देखकर मुसलमान सूबेदार पीछे की ओर भाग खड़े हुए और पहाड़ी फौजें भी। उस संध्या गुरु जी ने अकाल पुरुख के आगे कृतज्ञता की अरदास की और विजय का नगाड़ा बजाया।

सीधे हमले में असफल रहने पर विरोधी फौजों ने आनंदपुर शहर का घेराव करने की योजना बनाई ताकि शहर में सामान या लोगों का आना–जाना पूरी तरह बन्द किया जा सके। उन्होंने शहर की पूरी तरह से नाकाबन्दी कर दी जिसके कारण शहर में बाहर से रोजमर्रा की वस्तुओं का आना बन्द हो गया। खाद्य पदार्थों की स्थिति बहुत गम्भीर हो गई और सिख मजबूर होकर खतरनाक मुहिम करने लग पड़े। वे रात के समय घेरा डालने वालों का रसद–पानी छीनकर लाने के लिए किले से बाहर चले जाते। कुछ दिन बाद दुश्मन की फौजों ने अपने भंडारों को एक स्थान पर इकट्ठा करके रात–दिन पहरा देना आरंभ कर दिया।

जब दुश्मन को सिखों की दुखभरी स्थिति का पता चला तो उसने गुरु जी को आनंदपुर छोड़कर चले जाने के लिए मनाने की एक और तरह की चाल सोची। राजा अजमेर चंद ने गुरु जी के पास अपना दूत भेजा यह सन्देश देकर कि अगर गुरु जी आनंदपुर छोड़कर चले जाएँ तो दुश्मन की फौजें हटा ली जाएँगी। और बाद में गुरु जी जब चाहे वापस आनंदपुर लौट आएँ। गुरु जी ने इस प्रस्ताव की ओर ध्यान नहीं दिया। यह पेशकश कई बार की गई थी, पर गुरु जी ने इसे नहीं माना था। भंयकर तंगियाँ सहने के कारण सिखों ने गुरु जी से किला खाली करके चले जाने के लिए विनती की, पर गुरु जी ने उन्हें कुछ समय और धीरज रखने की सलाह दी। जिन सिखों ने दुश्मन की तजवीज़ सुनी, वे गुरु जी की माता जी के पास गये कि वे गुरु जी पर अपने प्रभाव का इस्तेमाल करें। माता जी ने भी गुरु जी के सम्मुख सिखों की विनती का समर्थन किया, पर असफल रहीं। गुरु जी ने माता जी को बताया कि दुश्मन की तजवीज़ एक धोखा है क्योंकि उनकी योजना सिखों को शहर की सुरक्षा में से बाहर निकालकर उन पर हमला करने की है। कुछ मसन्द और सिख जिन पर पहाड़ी राजाओं ने अपना प्रभाव डाल लिया था, वे भी दुश्मन की तजवीज़ मानकर शहर छोड़कर जाने के लिए जोर डालने लगे। कुछ सिखों ने धीरज खो दिया और हौसला छोड़ बैठे। गुरु जी ने उन्हें अपनी निष्ठा प्रगट करने के लिए कहा। उनमें से चालीस सिखों ने 'बेदावा' लिखकर दे दिया कि वे उनके गुरु नहीं और न ही वे गुरु के सिख हैं। बेदावे पर दस्तख्त कर देने के बाद गुरु जी ने उन्हें चले जाने की आज्ञा दे दी। फिर, गुरु जी ने दुश्मन की धोखेबाजी को नंगा करने के लिए एक योजना बनाई।

गुरु जी ने राजा अजमेर चंद के दूत को बुलाया और उसे बताया कि गुरु जी आनंदपुर छोड़ जाएँगे अगर दुश्मन की फौजें पहले गुरु जी को अपना खजाना और जायदाद आदि से जुड़ा सामान भेजने दें। हिंदुओं ने सालगराम और मुसलमानों ने कुरान की कसम खाकर कहा कि वे गुरु जी का सामान आदि ले जाने वाले सेवकों के साथ धोखा नहीं करेंगे और न ही उन्हें तंग करेंगे। गुरु जी ने उसी समय बेकार सामान बैलगाड़ियों पर लदवा दिया। बैलों के सींगों के साथ मशालें लगा दी गईं और आधी रात के समय इस तरह बैलगाड़ियों का काफिला चल पड़ा। साथ में कुछ सिख थे। जब काफिला दुश्मन फौजों के कैम्प के पास पहुँचा तो वे सैनिक सारी कसमें भूलकर सिखों की उस छोटी–सी टोली पर ही टूट पड़े, खजाना लूटने की खातिर। जब उन्होंने देखा कि खजाने की जगह तो कूड़ा–करकट भरा था, तो वे बहुत निराश हुए। इस प्रकार, गुरु जी ने शत्रु की धोखेबाजी को नंगा किया और सिखों को बताया कि जितना भी कष्ट

उन्होंने झेला है, यह सब अकाल पुरुख की इच्छा है। गुरु जी ने गुरु नानक जी का शबद "दुख दारू सुख रोग भया, जा सुख ताम न होई" भी सुनाया।

आखिर में, गुरु जी के पास बादशाह का दस्तख्त किया पत्र आया जिसमें उसने लिखा, "मैंने कुरान की कसम खाई है कि आपको कोई तकलीफ़ नहीं दूँगा। अगर दूँगा तो मुझे अगले जहान अल्लाह के दरबार में जगह न मिले। जंग बन्द करके आप मेरे पास आ जाओ। अगर इधर नहीं आना चाहते तो जहाँ आपकी खुशी हो, जा सकते हो।" बादशाह के हरकारे ने भी कहा कि बादशाह ने इकरार किया है कि गुरु साहिब को कोई नुकसान नहीं पहुँचाएगा। पहाड़ी राजाओं ने भी अपने देवताओं को साक्षी मानकर गऊ की सौगंधें खाईं कि वे गुरु जी को सही सलामत चले जाने देंगे। गुरु जी ने दुश्मनों को बताया, "आप सब झूठ बोलते हो, और इसीलिए तुम्हारे बादशाह की और तुम्हारी साख मिट्टी में मिल जाएगी। तुम सबने पहले भी कसमें खाई थीं और फिर उन पर कायम नहीं रहे।"

सिख फिर गुरु जी के माता जी के पास गये और शिकायत की कि गुरु जी ने दलील सुनने से इन्कार कर दिया है। पर गुरु जी ने उन्हें बताया था कि उनका कहना ठीक है, पर दुश्मन की शर्तें मानकर किले में से बाहर चले जाना मुनासिब नहीं। सिखों ने भूख के दुख के कारण हरकारे की बात की हिमायत की। गुरु जी ने उन्हें दिलासा दिया, "मेरे भाइयो, घबराओ नहीं। मैं केवल तुम्हारी भलाई चाहता हूँ, तुम नहीं जानते कि यह दुश्मन लोग घोखेबाज हैं और हमें हानि पहुँचाने के मन्सूबे बना रहे हैं। अगर तुम लोग थोड़े समय और धीरज रखो तो तुम्हें जी भरकर खाने के लिए मिल जाएगा।" जब सिखों ने और प्रतीक्षा करने से मना कर दिया तो गुरु जी ने फिर कहा कि वे कुछ दिन और धीरज रखें, अकाल पुरुख उन्हें राहत भेजेगा।"[7]

लेकिन सिखों ने एक दिन भी रुकने से इन्कार कर दिया। गुरु जी ने फिर अपनी विनती दोहराई और कहा कि दुश्मन तब लौट जाएगा और तुम सब प्रसन्न हो जाओगे। उन्होंने सिखों को चेतावनी दी, "प्यारे खालसा जी, तुम अपनी तबाही की ओर भाग रहे हो, जब कि मैं तुम्हें बचाने का यत्न कर रहा हूँ।"

सिख भूख के दुख से इतने व्याकुल थे कि उन्होंने एक दिन के लिए भी रुकने से इन्कार कर दिया। गुरु जी के माता जी भी किला छोड़कर चले जाने के हक में थे। दुश्मन फौजों ने एक सैयद और एक ब्राह्मण को भेजा कि वे दोनों उनकी ओर से गम्भीर कसमें खाकर बतायें कि अगर गुरु जी आनंदपुर छोड़ जाएँ तो उन्हें सही–सलामत जाने दिया जाएगा। यह देखकर सिख गुरु जी के लिए वफ़ादारी से डोलने लगे और अन्त में, केवल चालीस सिखों ने गुरु जी के संग रहने और उनके भाग्य के साथ बने रहने का फैसला किया। गुरु
जी ने उनसे कहा कि वे भी छोड़कर जा सकते हैं। लेकिन, उन चालीस सिखों ने मना कर दिया और कहा कि वे या तो गुरु जी के साथ किले में रहेंगे, या फिर गुरु जी जैसा भी हुक्म देंगे, उसी तरह बाहर जाने का रास्ता वीरता के साथ बना लेंगे। गुरु जी उस समय जानते थे कि उनके धर्म का बीज प्रफुल्लित होगा। उन्होंने आखिर आनंदपुर छोड़कर चले जाने का फैसला कर लिया। उन्होंने अपने सिखों को हुक्म दिया कि सभी रात के समय चलेंगे। आनंनदपुर आखिर 6–7 पौह सम्वत् 1762 (20–21 दिसम्बर 1705) को खाली कर दिया गया।

भाई दया सिंह और उदय सिंह गुरु जी के आगे–आगे चले, मोहकम सिंह और साहिब सिंह गुरु जी के दायीं ओर, पाँच प्यारों के बाद जिस टोली ने अमृत छका था, वे गुरु जी के बायीं ओर चल रहे थे। गुरु जी के साहिबजादे अजीत सिंह और जुझार सिंह तीर कमान लिए गुरु जी के पीछे–पीछे चल रहे थे। फिर, भाई हिम्मत सिंह गोली–सिक्का और बन्दूकें उठाये आ रहा था। गुलाब राय, शाम सिंह और अन्य सिख और सम्बन्धी उसके साथ थे। बाकी श्रद्धालू जो कुल पाँच सौ के करीब थे, सबसे पीछे आ रहे थे।[8]

जैसे शत्रु को गुरु जी के चलने की खबर मिली, वे फिर अपनी कसमें भूल गये और एकदम गुरु जी का पीछा करने में जुट गये। छोटी झड़पें कीरतपुर से शुरू हो गईं। बढ़ रहे खतरे को अनुभव करते हुए गुरु जी ने भाई उदय सिंह की जिम्मेदारी शत्रु फौजों को बढ़ने से रोकने पर लगा दी। भाई उदय सिंह ने शाही टिब्बी पर एक खूँखार लड़ाई लड़ी। दुश्मन की फौज ने इस निडर और गुरु जी के बहादुर योद्धाओं में से सबसे अधिक शूरवीर को शहीद कर दिया। जब शाही टिब्बी की लड़ाई चल रही थी, गुरु जी सरसा

नदी के किनारे पहुँच चुके थे। उस समय खबर मिली कि दुश्मन सेना का एक दल बहुत तेजी से उनकी तरफ आ रहा है। भाई जीवन सिंह[9] को पीछा कर रहे
सैन्य दल का सामना करने के लिए एक सौ शूरवीरों की टोली सौंप दी गई। शेष सिखों और अन्य साथियों के साथ गुरु जी बाढ़ से उफनती नदी में घुस गये। बाढ़ इतनी जबरदस्त थी कि बहुत सारे लोग नदी में डूब गये और बहुत सारे अलग–अलग दिशाओं में बिछड़ गये, जिनमें गुरु जी के माता जी और दो छोटे साहिबजादे जोरावर सिंह और फतह सिंह थे। इसके अतिरिक्त, बहुमूल्य साहित्य और सामान भी नष्ट हो गया। गुरु जी अपने दो बड़े साहिबजादों और कुछ निपुण सिखों के साथ सरसा नदी के दूसरे किनारे पर स्थित घनोला गाँव में पहुँचे। यह अनुभव करते हुए कि आगे का रास्ता खतरे से भरा हो सकता है, गुरु जी ने भाई बचित्र सिंह को एक सौ सिख सौंपकर सीधे रास्ते से रोपड़ जाने के लिए आदेश दिया। स्वयं गुरु जी कुछ जाने–जाने सिखों के साथ लम्बे रास्ते से जाकर रोपड़ के निकट कोटला निहंग पहुँचे, जहाँ उनको पठान निहंग खान के पास ठहरना था। पठान गुरु साहिबान का एक पुराना और सुहृदय श्रद्धालू था। भाई बचित्र सिंह और उसके साथियों को रोपड़ के निकट एक गाँव मलिक पुर के रंघड़ों के घेरे में से और रोपड़ के पठानों के बीच से लड़कर गुजरना पड़ा। इस अवसर पर जो भंयकर लड़ाई हुई, उसमें सिखों की बहुत बड़ी संख्या शहीद हो गई और बचित्र सिंह गम्भीर रूप से घायल हो गया।

गुरु जी कोटला निहंग अधिक समय नहीं ठहरे। लगता था कि उन्हें माछीवाड़ा और रायकोट जाना था। अपने दो बड़े साहिबजादों और चालीस सिखों के साथ कोटला निहंग के बाद बूर माजरा में रुके। उन्हें सूचना मिली कि सरहिंद की फौजों का एक बड़ा दल उनका पीछा कर रहा है। गुरु जी ने एकदम फैसला किया कि दुश्मन का मुकाबला चमकौर की गढ़ी में से किया जाए, सो वे तेजी से चमकौर की ओर चल पड़े। उन्हें इस गढ़ी की महत्ता का पता था क्योंकि वे एक बार पहले इस स्थान पर लड़ाई लड़ चुके थे।

चमकौर[10] का युद्ध :

शाही सेना जो तेजी से पीछा कर रही थी, ने आकर गढ़ी को चारों ओर से घेर लिया। उनके साथ पहाड़ी राजाओं के साथ–साथ रंघड़ और गूजर भी आ मिले। गुरु जी ने गढ़ी की चारों दवारों की रखवाली के लिए हरेक पर आठ–आठ सिख नियुक्त कर दिये। दो सिख दरवाजे पर और अन्य दो पहरा देने के लिए लगा दिये। स्वयं गुरु जी, उनके दोनों साहिबजादे और भाई दया सिंह और संत सिंह गढ़ी की सबसे ऊपर वाली छत पर चले गये। शाही फौजों के सामने भारी असमानता होते हुए भी सिख लम्बे समय तक गढ़ी में डटे रहे। शाही फौजों के दो अफसरों– नाहन खान और गैरत खान, ने गढ़ी के ऊपर चढ़ने का यत्न किया, पर गुरु जी की गोलियों से वे मारे गये। इसके बाद किसी मुसलमान अफसर ने गढ़ी पर चढ़ने का साहस नहीं किया। पाँच सिख दुश्मन का सामना करने के लिए आगे आए। बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए वे सारे शहीद हो गये। इस प्रकार पाँच–पाँच सिख आगे आते रहे और लड़ते रहे। गुरु जी के सबसे बड़े साहिबजादे(जिसकी आयु करीब 18 वर्ष की थी) ने गुरु जी से दुश्मन से युद्ध करने के लिए जाने की आज्ञा मांगी। गुरु जी मान गये और अजीत सिंह पाँच शूरवीरों के साथ आगे बढ़ा। उसने बहादुरी के हैरान कर देने वाले जौहर दिखलाये और अन्त में, वीरता से लड़ते हुए पाँच सिखों के साथ शहीद हो गया। अपने भाई की शहादत देखकर जुझार सिंह (जिसकी आयु 14 वर्ष की थी) रह न सका और उसने अपने पिता गुरु जी से लड़ने की आज्ञा मांगी। अपने भाई की भांति जुझार सिंह भी रणक्षेत्र में जूझ पड़ा और कुछ समय बाद वापस आकर उसने पीने के लिए पानी मांगा। गुरु जी ने ऊँची आवाज में कहा, "बेटा वापस जाओ, तुम्हारे लिए इस धरती पर और पानी नहीं रहा। वो देखो, अजीत सिंह तुम्हारे लिए अमृत का प्याला लिए खड़ा है।" जुझार सिंह वापस गया और उसने शत्रु की फौज में तबाही मचा दी और बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गया। इस पर गुरु जी का चेहरा खिल उठा। अपने साहिबजादों का चमत्कारी अन्त देखकर गुरु जी के चेहरे पर उनकी मानसिक शान्ति, दैवी प्रकाश पा रही थी।

अपने साहिबजादों की शानदार उद्देश्य प्राप्ति के बाद, गुरु जी स्वयं बाहर जाकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। थोड़े से सिख जो बचे थे, उन्होंने गुरु जी के चरणों में झुककर प्रार्थना की कि वह

बाहर न जाएँ। उस समय उनकी जीत गुरु जी की रक्षा करने में ही थी। इसलिए उन्होंने गुरु जी को मनाने का यत्न किया कि गुरु जी गढ़ी छोड़कर चुपचाप निकल जाएँ। उन्होंने तर्क दिया कि अगर गुरु जी जीवित रहें तो वे इन जैसे लाखों शूरवीर बना लेंगे। पर गुरु जी उनकी तजवीज़ सुनना नहीं चाहते थे। तब भाई दया सिंह, पाँच प्यारों में से पहले, ने हाथ जोड़कर खड़े होकर विनती की कि सतगुरु जी, खालसा की स्थापना के समय आपने प्रतिज्ञा की थी कि पाँच प्यारे सिखों का अगर कभी कोई आदेश होगा तो आप उसे ज़रूर मानेंगे। सो भाई दया सिंह ने दूसरे चार सिखों को लेकर एक गुरमता(प्रस्ताव) पास किया, और गुरु जी से कहा, **"सच्चे पातशाह, अब खालसे का आपको हुक्म है कि आप गढ़ी छोड़कर सही सलामत यहाँ से निकल जाओ।" सो, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार निराले शहंशाहों के शहंशाह गुरु गोबिंद सिंह जी ने खालसे के आगे सिर झुकाकर गढ़ी छोड़कर जाने का हुक्म स्वीकार कर लिया।**

भाई संत सिंह और संगत सिंह गढ़ी में रहने के लिए तैयार हो गये जबकि भाई दया सिंह, धर्म सिंह और मान सिंह गुरु जी के साथ उनकी सुरक्षा की खातिर जाने के लिए दृढ़ संकल्प थे।[11] कहा जाता है कि भाई संत सिंह की शक्ल–सूरत गुरु जी से बहुत मिलती–जुलती थी। सो, गुरु जी ने अपनी कलगी उसके सिर पर लगा कर, अपना जिरिह बख्तर उसको पहनाकर उसे ऊपर वाली छत के कमरे में बिठा दिया, जहाँ वे स्वयं बैठे थे। गुरु जी और उनके तीन साथी रात के समय गढ़ी में से निकल गये। गुरु जी ने तीनों सिखों से कहा कि अगर वे किसी कारणवश उनसे बिछुड़ जाएँ तो वे एक तारे जो गुरु जी ने उन्हें दिखाया था, की दिशा में चलते रहें। यह दिसम्बर महीने की ठंडी रात थी और दुश्मन के सिपाही अपने तम्बुओं में सो रहे थे। गुरु जी ने

दुश्मन को जगाने का फैसला किया ताकि वे यह न समझें कि गुरु भगोड़ा हो गया है। उन्होंने तुर्की संतरियों के ऊपर दो तीर छोड़े। तीर पहले तो संतरियों के हाथों में पकड़ी मशालों पर लगे और फिर उनके देहों में से पार हो गये। मशालें बुझ जाने के कारण हुए अंधेरे में गुरु जी और तीन सिख निकल पड़े। कुछ और आगे पहुँचे तो गुरु जी ने ताली बजाई और ललकार कर आवाज दी कि गुरु जा रहा है, अगर कोई पकड़ना चाहता है तो कोशिश कर ले।[12]

जब गुरु जी गढ़ी में से निकलने लगे थे तो उन्होंने पीछे छूट रहे सिखों को डटे रहने के लिए उत्साहित किया। इन सिखों ने दुश्मन की फौजों का भारी नुकसान किया। मुसलमान आखिर गढ़ी पर चढ़ने में सफल हो गये। उन्हें यकीन था कि वे गुरु जी को कब्जे में कर लेंगे। पर उन्हें बेहद निराशा हाथ लगी जब बाद में उन्हें पता चला कि कलगी लगाये, जिरिह बख्तर पहने बैठा व्यक्ति गुरु नहीं, संत सिंह था और गुरु जी तो बचकर निकल गये थे। दुश्मन की फौजें अपनी–अपनी जगहों पर लौट गईं। वज़ीर खान ने अपने इलाकों में सब तरफ हुक्म भेज दिया कि जो कोई भी गुरु जी की सहायता करेगा, उसे सख्त सजा दी जाएगी और जो गुरु जी को गिरफ्तार करेगा या उनकी सूचना देगा, उसको भारी इनाम दिया जाएगा।

गढ़ी छोड़ने के बाद गुरु जी नंगे पांव अकेले अपने सफ़र पर चलते गये और जंडसर और बहिलोलपुर में से निकलने के बाद वह माछीवाड़े के कंटीले जंगल में पहुँचे, जो रोपड़ और लुधियाना के मध्य में स्थित है। प्यास, भूख और थकावट ने उन्हें घेर रखा था। गुरु जी के चरण छालों से भरे थे। जब वे एक बाग में पहुँचे तो एक मिट्टी के ढेर पर शीश टिकाकर सो गये। जब वे इस तरह आराम कर रहे थे तो उनके तीन साथी भाई दया सिंह, धर्म सिंह और मान सिंह आ पहुँचे और इस प्रकार वे गुरु जी से आ मिले।

उस वक्त स्थिति बड़ी गम्भीर थी क्योंकि दुश्मन दल गुरु जी का तेजी से पीछा कर रहा था। माछीवाड़े का एक पुराना मसन्द गुलाबा गुरु जी और
उनके साथ तीन सिखों को अपने घर ले आया, पर जल्द ही वह डरकर गुरु जी को अपने पास रखने से घबरा गया। इस अवसर पर दो पठान – नबी खान और गनी खान, जो घोड़ों के व्यापारी थे और गुरु जी के पुराने जानकार थे, आये और गुरु जी की सेवा में अपनी जान का खतरा तक उठाने के लिए तैयार हो गये। उस गाँव में एक सिख औरत रहती थी, जिसने गुरु जी के लिए एक कपड़ा बुनकर तैयार किया हुआ था और प्रण कर रखा था कि वह उस कपड़े को तब तक संभाल कर रखेगी जब तक गुरु जी उसके गाँव में अपने चरण नहीं रखेंगे। गुरु जी ने वह कपड़ा परवान करके नीला रंगवा लिया और मुसलमान यात्रियों की तरह चोगा बनवाकर पहन लिया और गुलाबा के गाँव से चले पड़े। गुरु जी को एक पालकी में बिठाकर

नबी खान और गनी खान ने आगे की ओर से उठा लिया और भाई धर्म सिंह और मान सिंह ने पीछे की ओर से, जबकि भाई दया सिंह गुरु जी के ऊपर चौरी(चंवर)[13] झूलाता रहा। सभी पूछने वालों को उन्होंने बताया कि वे 'उच का पीर'[14] ले जा रहे हैं। क्योंकि नबी खान और गनी खान उस इलाके में घोड़ों के प्रसिद्ध व्यापारी थे, लोग उन पर यकीन करते थे। वहाँ से गुरु जी घंगराली गाँव में पहुँचे और उससे आगे लाल। लाल गाँव लुधियाना ज़िले में दोराहा से करीब पाँच मील दूर है। यहाँ एक फौजी अफसर को कुछ सन्देह हो गया और उसने जंगी पूछताछ की। नूरपुर का पीर मुहम्मद गुरु जी को जानता था, अफसर ने उसे पालकी में बैठे व्यक्ति की पहचान करने के लिए कहा। पीर मुहम्मद ने देखकर पक्का कर दिया कि यह तो सचमुच 'उच का पीर' ही है। सो, अफसर ने गुरु जी की पालकी को जाने दिया। वहाँ से गुरु जी कटाना और फिर कनौओ गये, जहाँ मसन्द फतह ने बहाने बनाकर गुरु जी को टालते हुए अपने पास ठहरने नहीं दिया। वहाँ से गुरु जी आलमगीर पहुँचे, जहाँ नंद लाल नामक एक जमींदार ने गुरु जी को एक घोड़ा[15] भेंट किया, जिस पर गुरु जी पालकी छोड़कर घोड़े पर सवार हो गये। अब स्थिति आसान हो गई थी और गुरु जी ने नबी खान और गनी खान दोनों को घर लौट जाने के लिए कहा और उन्हें
एक प्रशंसा पत्र (हुक्मनामा) प्रदान किया कि गुरसिख इन दोनों का सम्मान करते रहें। पीर मुहम्मद को भी गुरु जी ने एक हुक्मनामा प्रदान किया। आलमगीर से गुरु जी घोड़े पर सवार होकर रायकोट की ओर गये। सिलोनी पहुँचने पर रायकोट का चौधरी राय काला, जो गुरु जी का श्रद्धालू था और कोटला निहंग के निहंग खान का करीबी रिश्तेदार था, गुरु जी की सेवा में उपस्थित हुआ और उन्हें रायकोट ले गया। यहाँ गुरु जी को नूरा माही ने गुरु जी के छोटे साहिबजादों के बारे में सरहिंद से लाई गई खबर दी।

मासूम साहिबजादों की शहादत :

उफनते हुए सरसा दरिया को पार करते समय आई विपदा के समय गुरु जी के साथी और परिवार के लोग अलग–अलग दिशा में बिखर गये। माता जीत कौर जी, माता साहिब कौर जी और उनकी दासियाँ, भाई मनी सिंह, धन्ना सिंह और जवाहर सिंह सभी एक टोली में इकट्ठा थे। जवाहर सिंह जो दिल्ली का वासी था, इन सबको अपने घर दिल्ली ले गया। गुरु जी के वृद्ध माता जी और दो छोटे साहिबजादे गंगू ब्राह्मण के साथ मोरिंडा के पास उसके गाँव सहेड़ी चले गये। गंगू ने गुरु जी के लंगर में इक्कीस वर्ष काम किया था। गुरु जी के माता गूजरी जी के पास एक पोटली में धनराशि थी। माता जी का धन देखकर गंगू ललचा गया और भूल गया कि उसने गुरु जी का इक्कीस वर्ष नमक खाया है। जब माता जी अर्द्ध निद्रा में थे, गंगू ने वह पोटली चुरा ली और शोर मचा दिया, "चोर ! चोर !" यह बताने के लिए कि कोई चोर धन चुराकर ले गया है। माता जी गंगू के पास आये और उससे कहा कि उन्होंने किसी चोर को घर में घुसते हुए नहीं देखा। इस पर गंगू अपने बचाव के लिए कहने लगा कि उस पर चोरी का इल्ज़ाम इसलिए लगाया जाता है क्योंकि उसने बेघरों और कानून से भागे लोगों को आसरा दिया है। अपना दोष मानने के बजाय उसने माता जी और साहिबजादों को घर से निकल जाने के लिए कह दिया। अन्त में, उसने उन्हें मोरिंडा के पुलिस अफसर के हवाले कर दिया, जिसने उन्हें सरहिंद के नवाब वज़ीर खान को सौंप दिया। उन्हें वहाँ एक बुर्ज में कैद कर दिया गया।

अगली सवेर दोनों साहिबजादे नवाब की कचहरी में पेश किये गये। वज़ीर खान का ख़्याल था कि अगर साहिबजादे मुसलमान बन जाएँ तो उसके मज़हब इस्लाम की शान होगी। इसलिए उसने उनसे कहा कि अगर वे मुसलमान बन जाएँ तो वह उन्हें एक जागीर देगा, उनकी शादी शहजादियों से करवा देगा, वे सुखी रहेंगे और बादशाह भी उनकी इज्ज़त करेगा। नौ वर्ष की आयु के जोरावर सिंह ने उत्तर दिया, "हमारे दादा जी, गुरु तेग बहादुर साहिब ने अपना शीश बलिदान कर दिया था, पर धर्म नहीं छोड़ा था और उन्होंने हमें उसी रास्ते पर चलने का हुक्म दिया था। सबसे अच्छा यह है कि हम सिख धर्म की रक्षा के लिए अपनी जानें दे दें और तुर्कों को अकाल पुरुख के क्रोध का भागी बनायें।" बात को जारी रखते हुए जोरावर सिंह ने कहा, "नवाब, मैं तेरे धर्म को ठोकर मारता हूँ और अपना धर्म कदापि नहीं छोडूंगा। यह

हमारे परिवार की रीति बन गई है कि जान दे देंगे, अपना धर्म नहीं। तू हमें लड़कियों की लालसाओं का लालच क्यों देना चाहता है ? हम तेरी पेशकश के झूठे फायदों के कारण अपनी राह से नहीं भटकेंगे।"

वज़ीर खान ऐसी मुँहफट बातें सहन न कर सका और उसने फैसला किया कि दोनों साहिबजादों को मरवा दिया जाए। सुच्चा नंद जो उसका एक हिंदू वज़ीर था, ने नवाब की हामी भरी यह कहकर कि साहिबजादे के ऐसे अंहकारी शब्द बेजा थे। उसने वज़ीर खान के क्रोध को यह कहकर और भड़का दिया कि ये बच्चे बड़े होकर अपने बाप के नक्शे–कदम पर चलेंगे और दुश्मनों को तबाह करेंगे। सो, नाग के इन बच्चों को समय रहते मार देना ज़रूरी है। उस समय मलेरकोटला का नवाब शेर मुहम्मद खान निडर होकर बोला, "नवाब साहिब, ये अभी बालावस्था में दूध पीते बच्चे है और उम्र में इतने छोटे हैं कि कोई कसूर करने लायक नहीं हैं और न ही इन्हें अच्छे या बुरे की पहचान है। पवित्र कुरान मासूम और बेआसरा बच्चों को कत्ल करने की इजाज़त नहीं देता। इसलिए मेहरबानी करके इन्हें रिहा कर दो।" इस अपील के बावजूद काज़ी ने बताया कि शरीअत के मुताबिक काफ़िरों को इस्लाम या मौत में से एक को चुनने का मौका दिया जाता है।

कहा जाता है कि साहिबजादों को इस्लाम कबूल करने के लिए मनाने की खातिर अगले दिन एक बहुत ही छोटे दरवाजे में से निकलने के लिए कहा गया जिसके सामने दूसरी ओर कुरान रखा हुआ था। इसके पीछे मंशा यह थी कि दरवाजा छोटा होने के कारण साहिबजादे सिर झुकाकर दरवाजे में से निकलेंगे और इस तरह उन्हें कहा जाएगा कि उन्होंने कुरान शरीफ के आगे सिर झुका दिया है, जिसका मतलब है कि इस्लाम कबूल कर लिया है। जब साहिबजादों ने यह फरेब देखा तो सात वर्ष की उम्र के फतह सिंह ने दरवाजे में से निकलते हुए पहले पैर आगे किये। कुरान शरीफ की ओर पैर करना इस्लाम का अपमान था। इस प्रकार, वज़ीर खान गुरु गोबिंद सिंह जी के सात और नौ वर्षीय दो साहिबजादों को जीत न सका। जब साहिबजादों को इस्लाम धारण करवाने का हरेक यत्न असफल रहा तो आखिर में यह हुक्म दिया गया कि दोनों को जिन्दा दीवार में चुनवा दिया जाए।

इस हुक्म के अनुसार दोनों साहिबजादों को खड़ा करके उनके कोमल शरीरों के चारों ओर ईंट–ईंट करके दीवार खड़ी की गई। जब दीवार साहिबजादा फतह सिंह के कंधों तक आई तो जल्लाद अपनी तलवार लेकर आगे बढ़ा और पूछने लगा कि दोनों में से किसका सिर पहले काटा जाए ? इस पर साहिबजादा फतह सिंह बोला, "ओ जल्लाद, सुनो, क्योंकि दीवार मेरे कंधों तक पहले पहुँची है, इसलिए मेरा सिर पहले काटो।" साहिबजादा जोरावर सिंह जोर से बोला, "नहीं, तू जब तक मेरा सिर नहीं काटेगा, इसका सिर नहीं काट सकता क्योंकि मैं इससे उम्र में बड़ा हूँ और मेरा हक बनता है, पहले जान देने का। इसलिए मेरा सिर पहले काटो।" ऐसी अजीब बहस सुनकर वज़ीर खान की कचहरी में सभी लोग चकरा गये। छोटे से बच्चे मौत के फरिश्ते का मजाक उड़ा रहे थे। इतिहासकार लिखता है कि साहिबजादा फतह सिंह का शीश पहले काटा गया। इसलिए इस स्थान का नाम फतहगढ़ साहिब इन दोनों साहिबजादों की याद में रखा गया। जब माता गूजरी जी, जो साहिबजादों की प्रतीक्षा कर रही थीं, को बुर्ज में यह खबर मिली तो उन्होंने वहीं प्राण त्याग दिये। यह बर्बर घटना 13 पौह सम्वत् 1762 (27 दिसम्बर 1705) को घटी। टोडर मल[16] नाम के धनवान सिख गुरु जी की माता जी और दोनों साहिबजादों का अंतिम संस्कार करने के लिए आगे आया। वज़ीर खान ने उससे कहा कि संस्कार के लिए जितनी जगह चाहिए, वह तभी मिलेगी अगर उतनी जगह पर सोने की मुहरें बिछाये। टोडर मल ने सोने की मुहरें बिछाकर जगह खरीदी और संस्कार किया। इनकी याद में वहाँ एक गुरद्वारा स्थित है। यहाँ हर वर्ष 11–13 पौह को तीन दिन का मेला लगता है। जैसे ही नूरा माही ने दुखभरी कहानी सुनाई, राय काला और अन्य सभी सुनने वाले शोक में डूब गये और ज़ार–ज़ार रोये। पर गुरु जी स्थिर और हमेशा की भांति शान्तचित्त थे। जब नूरा माही ने पीड़ामयी वार्ता पूरी की, गुरु जी ने अकाल पुरुख का धन्यवाद किया कि उनके सुपुत्रों के जीवन का अन्त शानदार और विजयपूर्ण ढंग से हुआ है। गुरु जी ने फिर अरदास की, "हे अकाल पुरुख जी, आपने मुझे पिता जी, माता जी और चार सुपुत्र बख्शे। ये सब आपकी मेरे पास अमानत थे। आज मैं यह अमानत आपको वापस लौटाने में सफल हुआ हूँ और खुश हूँ।" जब गुरु जी नूरा माही से सारा हाल सुन रहे थे, उस समय वह एक झाड़ी को उखाड़ते जा रहे थे। तब उन्होंने कहा, "जैसे मैंने यह झाड़ी जड़ सहित उखाड़ी है, इस तरह

तुर्क जड़ से उखाड़े जाएँगे।"[17] गुरु जी ने यह भी फरमाया, "नहीं, मेरे बच्चे मरे नहीं, वे अपने सनातन घर में वापस चले गये हैं। सरहिंद है जो मरेगा।"[18]

गुरु जी ने अपना सफ़र जारी रखा और हेहर पहुँचे, जहाँ वह भंगाणी के युद्ध के शूरवीर महन्त कृपाल के पास दो दिन रहे। अगला ठिकाना लम्मा जटपुरा था। राय कल्ला जो गुरु जी के साथ आ रहा था, आज्ञा लेकर चला गया। यह अनुभव करके कि रायकोट के आसपास का इलाका दुश्मन की ललकार का मुकाबला करने के लिए ठीक नहीं, गुरु जी ने अपने सिखों को
जंगल देश की ओर चलने का आदेश दिया, जो बरार लोगों का इलाका था।
राह में गुरु जी मनूके, मेहदीआना चक्कर, तख्तपुर और मेदन गाँवों में से गुजरे और फिरोजपुर जिले में दीना पहुँचे।

दीना में एक श्रद्धावान सिख ने गुरु जी को एक बहुत बढ़िया घोड़ा भेंट किया जो गुरु जी ने अपने लिए परवान कर लिया और जिस घोड़े पर सवार होकर वह आये थे, वह भाई दया सिंह को दे दिया। गुरु जी के आने की खबर इलाके की संगतों को मिली और उनके जत्थे के जत्थे गुरु जी के दर्शन करने के लिए आने लगे। कुछ प्रभावशाली लोग जो गुरु जी का दर्शन करने आये थे, वे थे– जोधा राय के पौत्र शमीरा, लखमीरा और तख्तमल। जोधा राय ने गुरु हर गोबिंद साहिब की गुरुसर के युद्ध में भौतिक सामग्री से जुड़ी सहायता की थी। भाई रूप चंद के पौत्र परम सिंह और धरम सिंह भी गुरु जी के दर्शन करने के लिए आये। सरहिंद के नवाब को पता चला कि शमीरा और उसके भाइयों ने गुरु जी की आवभगत की है। उसने शमीरे को इस बारे में चिट्ठी लिखी और हुक्म दिया कि वह गुरु जी को कैद कर ले और उसके पास पेश करे। शमीरा ने उत्तर दिया कि वह केवल अपने पुरोहित की आवभगत कर रहा था जो सिर्फ अपने सिखों को दर्शन देने आये हुए हैं और किसी को कोई तकलीफ़ नहीं दे रहे। पर शमीरा डरता था कि नवाब अपनी फौज भेजकर गुरु जी को कैद कर लेगा। सो, उसने एक जासूस भेजा, नवाब की हरकतों और चालों के बारे में खबर लाने के लिए।

गुरु जी दीने में कुछ दिन ठहरे। यहीं गुरु जी ने **अपना प्रसिद्ध 'ज़फ़रनामा'**[19] (बादशाह औरंगजेब के नाम फारसी में पत्र) लिखा था। असल में, यह बादशाह की ओर से गुरु जी को आये निमंत्रण पत्रों का अति उत्तम उत्तर था। यह पत्र गुरु जी की महानता का सूचक है और इसकी एक–एक पंक्ति कचोटने वाली सच्चाई और न्याययुक्त नाराज़गी से भरी हुई है। गुरु जी ने बादशाह को लिखा कि उन्हें उसके अल्लाह के नाम पर किये गये संजीदा इकरारों और कुरान पर खाई गई कसमों पर कोई भरोसा नहीं। असलीयत यह
है कि बादशाह हर मौके पर अपने संजीदा इकरारों पर नहीं टिक पाया और झूठा, कमीना और धोखेबाज साबित हुआ। गुरु जी ने लिखा, "क्या हुआ जो मेरे चार बेटे मारे गये, मैं तो पीछे कुंडली मारे बैठे सांप की तरह बैठा हूँ ! थोड़ी सी जीवन की चिंगारियों को बुझा देना क्या बहादुरी है ? तू केवल एक तेज जल रही आग को भड़का रहा है।कृकृ जैसे तूने उस दिन अपने कहे को भुला दिया था, उसी तरह अल्लाह तुझे भूल जाएगा। अल्लाह तुझे तेरे शैतानी कामों का फल देगा। तू अपनी सल्तनत का गुमान करता है, मुझे अपने अकाल पुरुख (अमर परमात्मा) के राज पर गर्व है।कृ जब अकाल पुरुख मित्र है तो दुश्मन क्या कर सकता है, बेशक वह सौ गुणा बड़ा हो जाए। अगर एक दुश्मन हजार बार दुश्मनी करता है, जब तक अकाल पुरुख मित्र है, तब तक दुश्मन उसका एक बाल भी बांका नहीं कर सकता।"

यह पत्र भाई दया सिंह और धर्म सिंह के हाथों बादशाह को भेजा गया जिसे उन्होंने दक्खिन में उसे दे दिया। इस पत्र ने बादशाह के सोये हुए अन्तः करण को जगाया और उसके अन्दर सच्चे पश्चाताप की भावना जगा दी। इस पत्र ने उस पर ऐसा जादुई प्रभाव डाला कि वह तड़पने लग पड़ा और शीघ्र ही बिस्तर पर जा गिरा। जब औरंगजेब की मौत करीब थी तो उसने अपने बेटे को यह चिट्ठी लिखवाई, जिसमें उसने बिताई गई ज़िन्दगी में अपनी हार का इकबाल किया :

"कृ जो कुछ भी अच्छा या खराब काम मैंने किया है, उसे मैं अपने सिर पर बोझ की तरह उस अदृष्य अल्लाह की दरगाह में ले जा रहा हूँ। कृ मैं अपनी किस्मत, जो मेरी इन्तज़ार में है, से बिलकुल अनजान हूँ। पर जो मैं जानता हूँ, वह यह है कि मैंने बहुत भारी गुनाह किये हैं। कह नहीं सकता कि मेरे लिए क्या सख्त सजा लिखी गई है। कृ"

गुरु जी दीना में रहते हुए आसपास की कुछेक जगहों पर भी गये। इतने में उन्हें पता लग गया कि सरहिंद के सूबेदार को यह मालूम हो गया है कि वह कहाँ ठहरे हुए हैं। इसलिए गुरु जी गहरा सोच–विचार कर रहे थे कि दुश्मन की ललकार का सामना करने के लिए कौन–सी जगह ठीक रहेगी। गुरु जी दीना से चले गये और बंदेर, बारगड़, सैहबल और सरावन आदि कई जगहों पर विचरे। सरावन में गुरु जी ने अपने सिखों को तीर–अंदाजी का अभ्यास करवाया। उससे आगे गुरु जी जैतो, कोटला मलूक दास, लांभावाली गये और उसके बाद कोटकपूरा पहुँचे। यह अनुभव करते हुए कि पीछा कर रहा शत्रु दल बहुत करीब आ पहुँचा है, गुरु जी ने चौधरी कपूरा जो एक बरार जट्ट था, से कहा कि वह अपना किला कुछ दिनों के लिए इस्तेमाल करने की खातिर उन्हें दे। मुगलों के क्रोध से डरकर कपूरा ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया।

वहाँ से गुरु जी ढिलवां सोढीया पहुँचे, जहाँ गुरु जी के एक संबंधी ने गुरु जी का बहुत गर्मजोशी और प्यार से स्वागत किया। जैसा कि परम्परा चली आ रही है, यहीं पर पष्थीचंद के वंश में कौल नामक एक सिख ने गुरु जी के दर्शन किये और उन्हें कुछ वस्त्र भेंट किये। गुरु जी ने अपना नीला चोगा जो माछीवाड़े से चलते समय से वह पहने आ रहे थे, उतार दिया और इसे टुकड़े–टुकड़े करके जला दिया। इस अवसर पर गुरु जी ने, कहा जाता है कि ये वचन कहे :

"मैंने नीले वस्त्र जो पहने हुए थे, फाड़ दिये हैं और इसके साथ ही तुर्कों और पठानों के राज्य का अन्त है।"

चौधरी कपूरा गुरु जी के साथ किये गये अपने खराब बर्ताव को लेकर पश्चाताप कर रहा था। वह गुरु जी के पास आकर क्षमा मांगने लगा। गुरु जी ने कृपा की, उसे क्षमा कर दिया। चौधरी ने गुरु जी की सेवा में एक अच्छा मार्गदर्शक जिसका नाम चौधरी खन्ना था, लगा दिया। गुरु जी उसके साथ पश्चिम की ओर खिदराने की ढाब की तरफ चले गये। राह में वह रमीना, मल्लन, गौरी संघर और काउनी में से होकर गुजरे।

इस दौरान गुरु जी के साथ एक बहुत बड़ी गिनती में उनके श्रद्धालू आ मिले। चालीस सिख जो आनंदपुर में गुरु जी को बेदावा लिखकर दे आये थे, उन्हें उनकी पत्नियों ने ताने मार–मार कर घर में न घुसने दिया। वे गुरु जी की छोटी सेना में जुड़ने के लिए वापस लौट आये। एक बहादुर स्त्री माई भागो उन चालीस सिखों के साथ–साथ माझा क्षेत्र के अन्य बहुत सारे सिखों को गुरु जी की सेवा में लेकर आई। गुरु जी ने फिरोजपुर जिले में खिदराने के एक रेतीले टीले पर मोर्चा लगा लिया था। मुगल फौज गुरु जी के कैम्प की ओर बढ़ी, पर गुरु जी पर हमला करने से पहले उसे माई भागो और जत्थेदार महां सिंह के एक सेनादल से टक्कर लेनी पड़ी। भंयकर लड़ाई हुई। अनुभवी मुगल कमांडर ने बहादुरी के कभी ऐसे जौहर नहीं देखे थे। लेकिन मुगल फौज भारी संख्या में होने के कारण माई भागो के सेना दल पर भारी हो गई। इस लड़ाई वाली जगह से करीब दो मील दूर गुरु जी ने टीले की ऊँचाई पर स्थित अपने मोर्चे से मुसलमानों की सेना पर तीर बरसाये, जिन्होंने काफी तबाही मचाई, लेकिन शत्रु दल को दिखाई नहीं दे रहा था कि किस ओर से तीरों की यह तबाही आ रही है। खिदराने की झील सूख जाने की वजह से मुसलमान फौज पीने वाले पानी की कमी से बहुत दुखी थे। सो, वज़ीर खान ने खालसे की सेना के मुख्य भाग पर हमले किये बग़ैर वापस लौट जाने का फैसला कर लिया। गुरु जी की विजय हो गई।

मुसलमान सेना के चले जाने के बाद गुरु जी रणक्षेत्र में गये और दोनों दलों के शहीद और ज़ख्मी हो गये शूरवीरों के चेहरे पोंछते हुए उनकी अद्भुत शूरवीरता की प्रशंसा करते रहे। गुरु जी ने देखा कि आनंदपुर के बेदावा देकर आये चालीस सिख भी बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गये थे, सिवाय महां सिंह के। महां सिंह अभी जीवित था, पर अन्तिम साँसें गिन रहा था जब गुरु जी ने उसे आँखें खोलने के लिए कहा और वचन दिया, "महां सिंह, पातशाही से लेकर मुक्ति तक जो कुछ भी चाहो, मांग लो।" तो आँखें खोलने के बाद महां सिंह गुरु जी के दर्शन करके बहुत खुश हुआ और उसने उत्तर दिया, "सच्चे पातशाह, हम पापी हैं कि उस संकट की घड़ी में हमने आनंदपुर में आपको बेदावा दे दिया। हमारे में से जो मुझसे पहले चले गये, उनके लिए स्वर्ग के द्वार बन्द है। पातशाह, कृपा करो और हमारा वह बेदावा आँखों से ओझल कर दो।" इतिहास में लिखा है कि कृपानिधान सतगुरु जी ने वह बेदावा पत्र जिसे गुरु जी इस सारे समय के दौरान अपने पास रखे हुए थे, निकालकर फाड़ दिया, जिसका अर्थ था –क्षमा का दान और

पुनर्मिलन। महां सिंह ने यह अपनी आँखों से देखा और अपना अन्तिम साँस लिया– प्रसन्नचित्त, क्षमायुक्त और मुक्त आत्मा के रूप में। चालीस सिखों की ही आत्मायें मुक्त हो गईं। इन्हें 'चालीस मुक्ते' कहा जाता है और हमारी रोज़ाना की अरदास में इसे याद किया जाता है। खिदराना का नाम भी तब से मुक्तसर के रूप में जाना जाता है। फिर, गुरु जी ने माई भागो को देखा जिसने इन चालीस सिखों को उत्साहित किया था। थोड़ी–सी सहायता ने उसे पुनर्जीवित कर दिया और गुरु जी ने उस पर भी कृपा की।

मुक्तसर से गुरु जी रुपाना, भंडेर, गुरुसर, थेहड़ी बम्बीहा, रोहीला, जंगियाना और भाई का कोट आये। फिर वे साहिब चंद की ओर चल पड़े और चटियाना पहुँचे, जहाँ बरारों ने, जो गुरु जी की सेना में लड़े थे, अपनी तनख्वाह का बकाया मांगा। ऐसा न करने पर, उन्होंने गुरु जी को आगे न जाने देने की धमकी दी। अकाल पुरुख की मेहर के कारण एक सिख पड़ोस की जगह से काफी धन गुरु जी की सेवा करने के लिए लाया, जिससे गुरु जी ने सारे बकाये भुगता दिये। लेकिन बरारों का मुखिया, चौधरी दाना, अपने लोगों के घमंडी बर्ताव से बहुत ही परेशान था और उसने अपनी तनख्वाह का कुछ भी स्वीकार न किया। चौधरी दाना की विनती पर गुरु जी उसके नगर महिमा–सवाये गये। वहाँ पहुँचकर गुरु जी ने अपना डेरा एक स्थान पर लगाया, जिसे आजकल लखीसर कहते हैं। वहाँ से गुरु जी आसपास की अन्य जगहों पर भी गये। चौधरी डल्ला की विनती मानकर गुरु जी ने तब अपना डेरा तलवंडी साबो ले जाने का फैसला किया। राह में गुरु जी चटियाना, कोट साहिब चंद, कोट भाई, गिदड़बाहा, रोहीला, जंगीराना, बम्बीहा, बजक, कलविरानी, चस्सी बागवाली, पक्का कलां और चक्क हीरा सिंह में से होकर गुजरे और तलवंडी साबो पहुँचे, जिसे अब दमदमा साहिब या तख्त दमदमा साहिब कहा जाता है। इस स्थान ने गुरु जी को इतना प्रभावित किया कि गुरु जी ने यहाँ अपना स्थायी निवास बना लिया और गुरु जी यहाँ नौ महीने और नौ दिन रहे।

गुरु जी दमदमा साहिब में :

इस समय तक मुगल बादशाह ने गुरु के विरुद्ध सारी बंदिशें हटा दीं। जफ़रनामा मिलने पर औरंगजेब ने सभी सूबेदारों को हुक्म भेज दिया कि गुरु जी को तकलीफ़ देने वाली सारी कार्रवाइयाँ बन्द कर दी जाएँ।

यहीं गुरु जी की पत्नी आ मिलीं। जब माता जी पहुँचीं तो गुरु जी गुरसिखों के बड़े दीवान में बैठे हुए थे, माता जी ने गुरु जी से पूछा, "मेरे चारों लाल(सुपुत्र) कहाँ हैं ?" सतगुरु जी ने उत्तर दिया, "चार मुए तो क्या हुआ, जीवत कई हजार, खालसा–शूरवीर लाल।"

दमदमा साहिब में शान्ति का समय गुरु जी ने अधिक से अधिक लाभकारी कामों में लगाया। उन्होंने मालवा इलाके में सिख धर्म की स्थायी नींवें रख दीं। दूर–पास से संगतें कतारबद्ध होकर आने लगीं और वहाँ एक नया आनंदपुर वाला वातावरण बना दिया। गुरु जी पड़ोस के कई स्थानों पर दूर–दूर तक गये। बहुत सारे पुराने और पुश्तैनी सिखों को अमृत छकाया गया और कई अन्य को खालसा पंथ में और अधिक पक्के तौर पर शामिल कर लिया गया। तलवंडी का मुखिया डल्ला, नाभा रियासत का बुजुर्ग –तिलोका और पटियाला रियासत का बुजुर्ग– रामा इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इनके अलावा, भारी संख्या में नये बने सिख भी थे।

गुरु जी ने करतारपुर, ब्यास के निकट, से आदि ग्रंथ की बीड़ मंगवाने के लिए कहा ताकि गुरु तेग बहादुर जी की बाणी भी उसमें अंकित की जाए। यह मौलिक बीड़ धीरमल्लियों के पास थी और उन्होंने इसे देने से इन्कार कर दिया। साथ ही, यह भी कहा कि अगर गुरु गोबिंद सिंह गुरु हैं तो वे स्वयं एक ग्रंथ रच लें। इसलिए इसी स्थान पर गुरु जी ने भाई मनी सिंह को सम्पूर्ण ग्रंथ साहिब जो आज तक प्रचलित है, लिखवाया। पावन ग्रंथ साहिब के अन्त में 'राग माला' (1430 पृष्ठ) है। लगता है कि 'राग माला' गुरु ग्रंथ साहिब का आवश्यक भाग नहीं है। गुरु ग्रंथ साहिब के हर एक 'शबद' का शीर्षक, 'शबद' के लेखक के बारे में बताता है, पर राग माला के शीर्षक "ੴ सतगुर प्रसादि। राग माला" इसके लेखक के बारे में कोई जानकारी नहीं देता कि यह किसकी रचना है ? मैकालिफ लिखता है :

"आलिम नाम के एक मुसलमान कवि ने सन् 1583 ई. (991 हिजरी) में 353 पदों का (एक पद साधारण तौर पर चार से छह पंक्तियों का था) "माधव नल संगीत" नामक ग्रंथ लिखा, जिसका उद्देश्य माधव नल और काम कंदला की प्रेमकथा है। राग माला जो गुरु ग्रंथ साहिब के अन्त में अंकित है, जिसमें रागों, रागनियों और उनके अन्य उपखंडों का वर्णन है, आलिम की रचना का अंश है, इसके त्रेसठवें पद से लेकर बहत्तरवें पद तक। यह समझ में नहीं आता कि यह पवित्र ग्रंथ साहिब में कैसे शामिल किया गया। इसमें दसों राग, गुरु ग्रंथ साहिब में अंकित किये गये रागों के अनुसार नहीं हैं।"

गुरु गोबिंद सिंह जी ने जो ग्रंथ साहिब की बीड़ लिखवाई, वह "दमदमा साहिब की बीड़"[20] कहलाती है। इस बीड़ का प्रकाश हरिमंदर साहिब में किया गया था, पर यह अब नहीं मिलती। पता नहीं कि इसे नष्ट कर दिया गया या यह बीड अहमद शाह अब्दाली अपने एक हमले के दौरान अमृतसर शहर में मचाई लूटपाट के समय अपने संग ले गया था।

निर्मल सिखों की श्रेणी भी यहीं पर बनाई गई, जिसका उद्देश्य था कि सिखों में एक ऐसे भाग को संगठित करना जो केवल सिख धर्म का अध्ययन और प्रचार ही करे। यहाँ भी गुरु जी का दरबार इतना शाहाना था जितना कि आनंदपुर में था। काफी बड़ी संख्या में कवि और विद्वान गुरु जी के दरबार में आ जुड़े। इन घटनाओं के कारण दमदमा साहिब एक प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र बन गया। गुरु जी ने अपनी फौजों का भी पुनर्संगठन किया। इस प्रकार, गुरु जी की शक्ति में वृद्धि हुई। अपने श्रद्धालुओं के अलावा, गुरु जी ने बाकायदा कुछ डोगरे और बरार भी अपनी सेवा में ले लिए थे।[21]

गुरु जी का औरंगजेब से मिलने दक्षिण की ओर जाना :

'ज़फ़रनामा' पत्र के उत्तर में यहीं पर शाही हरकारे गुरु जी के पास आये, यह सन्देश देने के लिए कि बादशाह स्वयं गुरु जी से मिलने की इच्छा रखते हैं। औरंगजेब लिखित 'अहिकाम–इ–आलमगिरी' में गुरु गोबिंद सिंह जी की ओर से मिले पत्र का जिक्र है और बादशाह का हुक्म भी दर्ज है, जो उसने लाहौर के मुनीम खान को दिया था कि गुरु जी के साथ समझौता करे
और उनके दक्षिण की ओर सफ़र करने के तसल्लीबख्श इन्तज़ाम भी करे। इस लिखत से यह भी साफ दिखाई देता है कि औरंगजेब गुरु जी से मिलने के लिए उतावला था। हो सकता है कि बादशाह पंजाब में अमन पक्का करना चाहता था ताकि वह दक्षिण में मरहटियां को फतह करने वाली अपनी योजनाओं पर पूरा ध्यान दे सके। इसलिए गुरु जी ने 30 अक्तूबर 1706(कई कहते हैं कि यह तारीख 20 अक्तूबर थी) को औरंगजेब से मिलने के लिए दक्षिण जाने का फैसला कर लिया। वे राजस्थान की ओर चल पड़े, जिस रास्ते से अहमद नगर(जहाँ बादशाह ठहरा हुआ था) जाना था। दमदमा से केवल, झोरा के रास्ते गुरु जी सरसा पहुँचे। वहाँ से वे नोहार, भदरा, सहेवा, मधू सिंघाना की ओर गये और फिर पुष्कर, जो ब्रह्मा से संबंधित एक पवित्र तीर्थ स्थान है। वहाँ से गुरु जी नरायणपुर चले गये, जिसको आम तौर पर 'दादूद्वारा' कहते हैं, जहाँ महात्मा दादू रहा करते थे और जहाँ उनके सम्पद्राय में वृद्धि हुई। गुरु जी उसके मठ में गये और महंत जैत राम से विचार–विमर्श किया। यहीं पर गुरु जी द्वारा अपना तीर दादू की कब्र की ओर नमस्कार करने के लिए झुकाने पर सिखों ने उन पर दंड लगाया था। मान सिंह ने गुरु जी को उनके अपने हुक्म के बारे में याद दिलाया कि "भूलकर भी मुसलमानों की कब्रों या हिंदुओं के श्मसानों की पूजा नहीं करनी है।" गुरु जी ने बताया कि उन्होंने मठ की ओर नमस्कार अपने सिखों की श्रद्धा और गुरु जी के हुक्म के पालन को परखने के लिए ही किया था। पर गुरु जी ने स्वीकार कर लिया कि वे उसूलों के अनुसार दोषी हैं और खुशी से सवा सौ रुपया जुर्माना भर दिया। यहाँ भाई दया सिंह और धर्म सिंह गुरु जी के हुक्म के अनुसार औरंगजेब को पत्र सौंप कर दक्षिण से वापस आकर मिले। फिर गुरु जी बघौर पहुँचे, जहाँ उन्हें औरंगजेब की मृत्यु और शाही गद्दी पर बैठने के लिए उसके पुत्रों में छिड़ी लड़ाई की खबर मिली। सो, अब आगे जाने की आवश्यकता नहीं थी और गुरु जी कुछ समय के लिए यहीं पर रहे।

औरंगजेब का सबसे बड़ा शहजादा बहादुर शाह पेशावर से तुरन्त वापस आया, अपने छोटे भाई आज़िम जिसने बादशाह बनने का ऐलान कर दिया था, का विरोध करने के लिए। भाई नंद लाल गुरु जी

के दरबार में स्थायी तौर पर आने से पहले शहजादा बहादुर शाह की नौकरी में था। इसलिए बहादुर शाह ने भाई नंद लाल[22] की मार्फत गुरु जी की सहायता लेनी चाही और साथ ही, गुरु जी के साथ इकरार किया कि वह हिंदुओं और मुसलमानों के साथ एक–जैसा साफ और न्यायपूर्ण व्यवहार करेगा और उसके पिता ने उनके संग जो भी नाजायज़ काम किये हुए हैं, को हटा देगा। सो, गुरु जी ने अपनी सेना की एक टुकड़ी भेजकर 'जाजू' की लड़ाई में सहायता की और बहादुर शाह जीत गया। गुरु जी द्वारा समय से की गई मदद के लिए शुक्रगुजारी की भावना के तहत बहादुर शाह ने गुरु जी को आगरा में अपनी ताजपोशी के समय पधारने का निमंत्रण भेजा। गुरु जी को 24 जुलाई 1707 को एक शाही पोशाक प्रदान की गई।

आगरा आवास के दौरान गुरु जी ने आगरा से करीब 25 से 30 मील दूर धोलपुर को अपने धर्म प्रचार के कार्यों के लिए केन्द्र बनाया। उन्होंने मथुरा, अलीगढ़, आगरा के क्षेत्रों में और भरतपुर और अलवर रियासतों में भी दक्षिण में जाने से पहले कई महीने प्रचार की खातिर दौरे किये। बहुत सारे लोग गुरु जी के सिख बने। कहा जाता है कि गुरु जी ने बादशाह बहादुर शाह के साथ कई बातों पर विचार किया, पर किसी परिणाम पर पहुँचने से पहले ही बादशाह को कुछ राजपूत रजवाड़ों की बगावत को कुचलने के लिए राजस्थान जाना पड़ा। उसने गुरु जी को साथ चलने का अनुरोध किया। इसी समय बहादुर शाह को खबर मिली कि उसके छोटे भाई काम बख्श ने दक्षिण में अपने आप को भारत का बादशाह घोषित कर दिया है। बहादुर शाह चित्तौड़गढ़ के रास्ते दक्षिण की ओर चल पड़ा। वहाँ से वह बुरहानपुर की ओर गया और गुरु जी ने हैदराबाद जाने तक उसका साथ दिया। गुरु जी वहाँ बहुत दिन ठहरे और योगी जीवन दास से मिले। वह दादूद्वारा के महंत जैत राम से भी मिले, जो संयोग से वहाँ थे। दोनों ने गुरु जी को एक बैरागी माधो दास और उसकी करामाती शक्तियों के बारे में बताया। गुरु जी ने माधो दास से मिलने का फैसला किया। इस समय गुरु जी सरहिंद के सूबेदार वज़ीर खान और अन्य अधिकारियों द्वारा पंजाब में किये जा रहे अत्याचारों को लेकर स्पष्ट फैसला

करने में बहादुर शाह द्वारा दिए जा रहे टालमटोल वाले उत्तरों से खुश नहीं थे। बादशाह एक या दूसरे बहाने से एक पक्का फैसला देने के लिए टाल रहा था। सो, गुरु जी ने हिंगलोई में उसका साथ छोड़ दिया और नांदेड़ की ओर चले गये, जहाँ वे जुलाई 1708 में पहुँचे।

बूटे शाह और मैलकम जैसे कुछ लेखक लिखते हैं कि गुरु जी दक्षिण में इसलिए गये थे कि लड़ाइयों में मिले कष्टों और बिछोड़ों के बाद वे स्थान–परिवर्तन चाहते थे। दूसरों का कहना है कि उन्होंने मुगल राज्य की नौकरी कर ली थी। कनिंघम ने लिखा है कि गुरु जी ने गोदावरी वादी में एक फौजी कमान ले ली थी।

ये सभी वष्तांत झूठे और गैर–जिम्मेदाराना है और सिख धर्म का सख्त निरादर दर्शाते हैं। ऐसा लगता है कि इन लेखकों में अधिकांश सिख धर्म के सिद्धान्तों से अनजान थे। इन सभी लेखकों को बताया जाना चाहिए कि सभी गुरु साहिबान का पूर्ण सिद्धान्त गुरबाणी की इन तुकों पर आधारित था :

"तेरा कीया मीठा लागै,

हरि नाम पदारथ नानक मांगै। (आसा महल्ला 5, पृष्ठ 394)

गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपनी नौ वर्ष की आयु में हिंदू धर्म की रक्षा के लिए अपने पिता जी की कुर्बानी दी और शक्तिशाली मुगल राज्य के शिखर के समय भी इसके सामने डटे रहे। जब गुरु जी की पत्नी ने पूछा कि उनके चार सुपुत्र कहाँ गये हैं, तो गुरु जी ने उत्तर दिया :

"चार मुये तां किआ होया,

जीवत (मेरे खालसे के रूप में) कई हजार।"

ज़फ़रनामा में गुरु जी ने बादशाह औरंगजेब को खुल्लमखुल्ला ललकारा :

"मेरे चार बेटे मार दिए गये हैं तो क्या हुआ, जब खालसा, सब मेरे बेटे जीवित हैं! जीवन की कुछ अच्छाइयों को बुझा देना क्या बहादुरी हुई ? तू एक जलती हुई आग को और अधिक भड़का रहा है।कृ"

इन वचनों में शोक की मात्रा तनिक भी नहीं है। इसलिए इस निर्दोष पक्की गवाही के होते हुए निराशा के विचार को मानना व्यर्थ की बात है।

नौकरी करने का विचार भी गुरु जी के सिद्धान्तों और आदर्शों के प्रकाश में रद्द किये जाने योग्य है। गुरु जी मुगल राज्य की नौकरी भला किसलिए करते ? उनके श्रद्धालू उन्हें 'सच्चा पातशाह' कहकर

बुलाते थे और वे थे भी सच्चे पातशाह ही, गुरु नानक देव जी की गद्दी पर विराजमान। एक सच्चे पातशाह होने के नाते उनके पास अथाह धन और सच्ची सिखी सेवकी थी। अगर थोड़ी–सी भी इन लेखकों की बात सुनी जाए, तो गुरु जी की उन पर और उनके श्रद्धालुओं पर हुए अत्याचारों की याद इतनी ताजा थी कि उनका उस अत्याचार करने वाली फौज की नौकरी करने का सवाल ही नहीं उठ सकता। न ही इस नौकरी का विचार गुरु जी की ओर से पंजाब में खालसे का नेतष्त्व करने के लिए बंदा बहादुर को भेजने से मेल खा सकता है। इन लेखकों की सारी दलीलबाजी निराधार है और एक कीचड़ उठाने वाली बात है।

गुरु जी नंदेड़ में :

नंदेड़ पहुँचकर गुरु जी ने गोदावरी नदी की एक रमणीक जगह को पसन्द किया। इस स्थान के चयन के बारे में आम तौर पर दो कारण बताये जाते हैं। एक तो वे बंदा बैरागी को मिलना चाहते थे और दूसरा, वहाँ भिन्न–भिन्न धर्मों के आठ आश्रम थे। गुरु जी पावन स्थानों के मुखियों के साथ विचार–विमर्श करना चाहते थे, ताकि वे उन्हें सच्चा राह दिखा सकें और अपने दर्षष्टिकोण की ओर प्रेरित कर सकें। शायद इसी कारण गुरु जी ने लोगों के संगठनों को सम्बोधित करना तुरन्त आरम्भ कर दिया। लोगों की भीड़ें जो रूहानी प्रकाश की खोज में थीं, गुरु जी के पास आने लगीं। जल्द ही, यह स्थान दक्षिण में सचमुच का आनंदपुर बन गया प्रतीत होने लग पड़ा।

यहाँ गुरु जी को खबर मिली कि बादशाह की फौज ने सधौरा लूट लिया है और पीर बुधू शाह को बागी करार दे दिया है; क्योंकि वह गुरु गोबिंद सिंह, जिसे फौज काफिर समझती है, का श्रद्धालू है।

एक दिन गुरु जी बैरागी माधो दास सन्यासी के स्थान पर गये। वहाँ पर बंदा बैरागी नहीं था और गुरु जी ने सुन रखा था कि जो भी उसके पलंग पर बैठता था, वह उसको चमत्कार से उल्टा देता था। सो, गुरु जी उस पलंग पर बैठकर आराम करने लगे। गुरु जी के श्रद्धालुओं ने एक बकरा झटकाकर बैरागी की वर्जित जगह पर पकाया था। बैरागी का एक शिष्य गुरु जी की कार्रवाई के बारे में उसे बताने लगा। बैरागी के स्थान पर एक पशु को मार देना और उसके पलंग जो कि उसका तख्त था, पर कब्ज़ा करके बैठना अपवित्र और निरादर था। बैरागी क्रोध में पागल होकर गुरु जी के पास आया। उसने अपनी सारी शक्तियों के द्वारा गुरु जी को हानि पहुँचाने की कोशिश की, पर सब निष्फल। जब उसका कोई वश न चला तो उसने गुरु जी से पूछा कि आप कौन है ? गुरु जी ने उत्तर दिया कि वे गुरु गोबिंद सिंह हैं। बैरागी शान्त हो गया और उसका क्रोध एकदम श्रद्धा में बदल गया। गुरु जी के नेत्रों में से निकले दिव्य प्रकाश ने बैरागी के मन में से सारा अंधेरा दूर कर दिया और उसने गुरु जी के सम्मुख उसी क्षण घुटने टेक कर और पूरे समर्पण के साथ स्वीकार किया कि वह गुरु जी का बंदा, एक चाकर था।

महान गुरु जी ने बैरागी को सिख धर्म के सिद्धान्त समझाये और अमृत छकाया। उसका नाम गुरबख्श सिंह रखा गया, पर वह बंदा या बंदा सिंह ही कहलाता रहा। उसने सिखों के मुख से मुसलमान राज्य की ओर से पंजाब में हुए जुल्म और गुरु जी के मासूम साहिबजादों के कत्ल के बारे में सुना हुआ था।

सो, वह जो भी गुरु जी की सेवा कर सकता था, करने के लिए तैयार हो गया। इस पर गुरु जी ने उसको पंजाब में जाने और वहाँ खालसे पर मुस्लिम राज्य की ओर से हो रहे जुल्मों के विरुद्ध लड़ने के लिए आदेश दिया। इसी के साथ गुरु जी ने उसको पाँच तीर और अपना कमान दिया और वचन दिया, "जब तक आप संयमी रहोगे, आपकी शोभा बढ़ेगी। जो कोई संतोषी है, वह लड़ने से पीठ नहीं मोड़ेगा, उसके विरोधी उसका सामना नहीं कर सकते। एक बार भी अगर आपने खालसा उसूलों को त्यागा और मर्यादा के उलट स्त्री–संग में पड़ गये तो आप की बहादुरी नष्ट हो जाएगी।" गुरु जी ने कुछ सिख इस मुहिम में सहायता के लिए साथ भेज दिए। बंदा बहादुर ने प्रतिज्ञा की, गुरु जी के आगे शीश झुकाया और चल पड़ा। यह गुरु गोबिंद सिंह जी की 'चिड़ियों से बाज तुड़ाऊँ और एक सिख को सवा लाख से लड़ाऊँ' की शक्ति का एक अदभुत उदाहरण था। बंदा बहादुर जो अहिंसा के सिद्धान्त से बंधा हुआ एक सन्यासी था, को गुरु जी की शक्ति ने उस समय का सबसे महान जरनैल बना दिया।

बंदा बहादुर ने दिल्ली से करीब 35 मील पर एक गाँव में गुरु जी का झंडा गाड़ दिया। पंजाब के सभी हिस्सों से आकर सिख इस झंडे के नीचे एकत्र हो गये और ऐसे जबरदस्त और तबाही मचाने वाले हमले किये कि कुछ ही महीनों में समाना, शाहबाद, सधोरा और छत बनूर मिट्टी में मिला दिये। इसके बाद आया सरहिंद। बंदा बहादुर ने इतना जोरदार और सफाया कर देने वाला हमला किया कि दुश्मन उसकी सेना के सामने खड़ा न हो सका। वज़ीर खान और उसका वज़ीर सुच्चा नंद तलवार की घाट उतार दिये गये। बादशाह बहादुर शाह बंदा बहादुर को कुचल देने में सफल न हो सका और सिखों पर विजय प्राप्त करने के भम्र में ही मर गया।

बंदा बहादुर के जाने के बाद गुरु जी ने वहाँ आसपास के भिन्न–भिन्न स्थानों पर निवास रखा, शिकार घाट जहाँ गुरु जी शिकार खेला करते थे, नगीना घाट जहाँ एक सिख ने छोटी जड़ी हुई अंगूठी गुरु जी को भेंट की, जिसे गुरु जी ने दरिया में फेंक दिया। फिर, हीरा घाट जहाँ गुरु जी ने उसी तरह भेंट की गई एक हीरे की मुंदरी दरिया में फेंकी थी और एक अन्य स्थान पर जिसे 'संगत साहिब' कहते हैं जहाँ गुरु जी अपने श्रद्धालुओं को उपदेश दिया करते थे।

गुरु जी और बादशाह बहादुर शाह के बीच निकट संबंधों ने सरहिंद के सूबेदार वज़ीर खान को भयभीत कर दिया। उसने ही गुरु जी के छोटे साहिबजादों को दीवार में जिन्दा चिनवाने और उनके शीश काट देने का हुक्म दिया था। सिखों पर पंजाब में सबसे अधिक जुल्म ढाने का भी वज़ीर खान ही जिम्मेदार था। वह डरता था कि अगर नये बादशाह और गुरु जी के बीच समझौता हो गया तो उसकी जान खतरे में थी। इसलिए उसने गुरु जी को शहीद कर देने के लिए एक साज़िश रची और दो पठान, गुल खान उपनाम जमशेद खान और अताउल्ला गुरु जी को कत्ल करने के लिए भेजे।

नंदेड़ में गुरु जी के दीवान में सब तरह के लोग आने शुरू हो गये। कुछ समय के बाद दो पठान भी उस दीवान में आने लग पड़े, जहाँ गुरु जी संगत को सम्बोधित हुआ करते थे। तीसरे या चौथे दिन, जमशेद खान को एक मौका मिला और जब शाम के दीवान के बाद गुरु जी अपने निवास स्थान पर गये, वह भी पीछे–पीछे अन्दर आ गया और गुरु जी को एक छुरे से जख़्मी कर दिया। हालांकि जख़्म गम्भीर था, फिर भी, उन्होंने उस समय उस पठान को मार दिया। उसका साथी पठान दौड़ा, पर एक सिख जो गुरु जी के निवास स्थान में से आवाज सुनकर तेजी से आ रहा था, ने उसको भी घायल करके मार गिराया।

गुरु जी की शहीदी से जुड़े हालात के बारे में कई तरह के विचार और कथायें प्रकट की गई हैं। कनिंघम लिखता है कि एक व्यापारी पठान जिसने गुरु जी को घोड़े बेचे हुए थे, एक दिन गुरु जी के पास आया और बेचे गये घोड़ों की रकम तुरन्त देने के लिए कहने लगा। गुरु जी के पास उस समय पूरी रकम न होने के कारण उन्होंने उसे किसी अन्य दिन आने के लिए कहा। पठान ने गुस्से में आकर हाथ उठाया तो गुरु जी ने उसे मार गिराया। उसके मृतक शरीर को ले जाकर दफना दिया गया और उसके परिवार ने अपनी किस्मत के साथ समझौता कर लिया। पठान के पुत्रों ने बदले की भावना बनाये रखी और इसे पूरा करने के लिए अवसर तलाश लिया। वे गुरु जी के विश्राम स्थल पर चोरी–छिपे घुस आये और जब गुरु जी सोये हुए थे और वहाँ कोई पहरेदार भी नहीं था, गुरु जी को छुरा मारकर शहीद कर दिया।(कनिंघम– हिस्ट्री आफ सिख्स, पृष्ठ 82)

दूसरे लेखक जैसे मैकगरैगर अपने सिखों के इतिहास (History of Sikhs, p.99-100) में लिखता है कि गुरु जी ने पठान को मारने के बाद तुरन्त ही अपनी गलती का अहसास किया और हर्जाने के रूप में उसकी विधवा पर विशेष कृपा की और उसके पुत्र का लालन–पालन किया जैसे कि एक पिता करता है। जब वह लड़का जवान हुआ तो, कहा जाता है, उसने गुरु जी को स्वयं उत्तेजित किया कि वह उन पर हमला करे। लड़के ने हमला किया जो गुरु जी पर मारक साबित हुआ। ट्रम्प भी इस वर्णन में यकीन रखता है और इस को तर्क का आधार देने के लिए कहता है कि गुरु जी जीवन से मोहमुक्त हो गये थे और इसका अन्त करना चाहते थे।

ये सभी कहानियाँ बेबुनियाद हैं। ये लेखक नहीं जानते कि गुरु जी क्या थे। गुरु गोबिंद सिंह जी गुरु नानक देव जी की इलाही गुरगद्दी पर विराजमान थे और इसलिए वे ईश्वरीय प्रकाश का साकार रूप थे, अकाल पुरुख कभी निराश या हताश नहीं होंगे। गुरु जी ने कभी भी कोई दुख का शब्द नहीं कहा। न

ही उन्होंने कभी बेमिसाल कष्टों में से गुजरते हुए, निराशता का कोई संकेत दिया। गुरु जी के उपदेशों या रचनाओं में कहीं भी अंकित नहीं है कि गुरु जी ने कभी दुख की आह भरी हो। जब नूरा माही गुरु जी के छोटे साहिबजादों पर हुए जुल्म की खबर लेकर आया तो खबर सुनकर गुरु जी ने अकाल पुरुख का धन्यवाद करते हुए कहा था, "पिता जी, माता जी और चारों बेटे मेरे पास आपकी अमानत थे। आज मैं यह सम्पूर्ण अमानत आप जी को वापस सौंपने में सफल हुआ हूँ और प्रसन्न हूँ।" मनुष्य के पूरे इतिहास में ऐसी मिसाल किसी को मिलना असम्भव है।

वर्तमान समय में एक हुक्मनामा इस बारे में एक नई रोशनी डालता है। इसके अनुसार गुरु जी से घोड़ों की बकाया कीमत देने के लिए कोई मांग नहीं की गई थी। बल्कि गुरु जी ने पठान को स्वयं बकाया रकम के बारे में याद दिलाया तो उसने मांगने से इन्कार कर दिया था। यह हुक्मनामा (गुरु जी की ओर से जारी किया गया प्रशंसा पत्र) गुरु जी ने पठान को उस के अच्छे और मित्रता भरे व्यवहार के लिए प्रदान किया था और उस पठान की सन्तान के पास आज भी मौजूद है। (करतार सिंह, 'जीवन गुरु गोबिंद सिंह, पृष्ठ 263)

ऐतिहासिक हालातों की पड़ताल करने से इस घटना में बादशाह की भागेदारी का पता चलता है। गुरु जी द्वारा बंदा बहादुर को पंजाब में लड़ाई को नये सिरे से शुरू करने की खातिर भेजे जाने और वज़ीर खान को मार दिये जाने के कारण बादशाह गुरु जी से संख्त नाराज था और गुस्से में भरा हुआ था। ऐसा लगता है कि बादशाह को यह डर था कि गुरु जी मराठों द्वारा मुगलों के खिलाफ लड़ी जा रही लड़ाई में उस समय उनसे मिल जाएँगें, जब वह स्वयं अपने भाई के साथ हैदराबाद में संघर्ष कर रहा था। शायद, इसी कारण वह गुरु जी को अकेला नहीं रहने देता था। बहादुर शाह को यह गलतफहमी भी थी कि गुरु जी को मार देने से उनके द्वारा पंजाब में फिर से चलाई गई बगावत की योजना को गहरा धक्का लगेगा। इसलिए उसने दो पठानों, जिन्हें वज़ीर खान ने नियुक्त किया था, के साथ गुरु जी के जीवन का अन्त करने के लिए साज़िश रची थी। नीचे लिखे ऐतिहासिक तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं :

28 अक्तूबर 1708 को बादशाह ने हुक्म दिया कि जमशेद खान अफगान, जिसे गुरु गोबिंद सिंह ने कत्ल किया था, के पुत्र को खिल्लत–ए–मातमी(मातमपुर्सी का चोगा) दिया जाए। इसका जिक्र बादशाही दरबार के समाचार पत्र (अखबारात–ए–दरबार–ए–मुअल्ला) में दर्ज है, जैसा कि डा. गंडा सिंह ने अपनी पुस्तक 'माखिज–ए–तवारीख–ए–सिखां' में पृष्ठ 83 पर इसका हवाला दिया है।

जमशेद खान कोई बड़े दर्जे का दरबारी नहीं था जिसे इतना ऊँचा सम्मान दिया जाता। वह केवल वज़ीर खान का जासूस था।

दो दिन के बाद 30 अक्तूबर 1708 को बादशाह ने गुरु जी के परिवार को भी मातमी खिल्लत देने का हुक्म दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि बादशाह ने जमशेद खान और गुरु गोबिंद सिंह जी, दोनों को बराबर की हस्तियाँ समझा, जिससे यह पक्का हो गया कि जमशेद खान को बादशाह की हिमायत मिली हुई थी।

"11 नवम्बर 1708 को बादशाह के पास दरख्वास्त पेश हुई कि गुरु जी अपने पीछे बहुत बड़ी जायदाद छोड़ गये हैं।" दरबारी ने पूछा कि इसे किस तरह निपटाया जाए ? हुक्म हुआ कि ऐसे माल–असबाब से शाही खजाना नहीं भरने वाला। "यह जायदाद एक दरवेश की थी। इसमें कोई दख़ल नहीं दिया जाना चाहिए।" बादशाह का यह हुक्म था।

बादशाह द्वारा इस प्रकार दरबारियों की इच्छा के विरुद्ध गुरु जी की सम्पत्ति को जब्त करने से इन्कार करना उसकी कूटनीति और मक्कारी को दर्शाता है। यह बिलकुल उसकी साज़िश को छुपाने का दिखावा और एक राज था, जैसा कि एच.आर. गुप्ता ने अपनी पुस्तक 'सिख गुरु साहिबान का इतिहास'(A History of Sikh Gurus) में पृष्ठ 246 पर लिखा है।

गुरु जी के ज़ख्म को झटपट बादशाह के यूरोपियन सर्जन डॉक्टर ने टांके लगा दिये और कुछ दिनों में ज़ख्म ठीक हो गया लगता था। इसके तुरन्त बाद इसे परखने के लिए गुरु जी ने एक सख्त मजबूत तीर–कमान को झटके से खींचा, जिसके कारण पूरी तरह ठीक न हुआ ज़ख्म फट गया और बहुत सारा रक्त बह गया। अब गुरु जी ने देखा कि अकाल पुरुख की ओर से बुलावा आ गया है। सो, उन्होंने दीवान में खालसे को अपने आदेश का अन्तिम और चिर–स्थायी सन्देश दिया। गुरु जी ने ग्रंथ साहिब का

प्रकाश किया, पाँच पैसे और एक नारियल रखकर मर्यादापूर्वक माथा टेका, गुरगद्दी सौंपने के लिए और भविष्य में ग्रंथ साहिब के गुरु हो जाने के संकेत के लिए। गुरु जी ने 'वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतह' बुलाई और पवित्र गुरु ग्रंथ साहिब जी की परिक्रमा की। फिर वचन किया, "प्यारे खालसा जी, जो भी मेरा दर्शन करना चाहे, वह गुरु ग्रंथ साहिब के दर्शन करे। गुरु ग्रंथ साहिब के हुक्म मानना। यह गुरु साहिबान का प्रगट रूप हैं, और जो मुझे मिलना चाहे, वह यत्न करके गुरु ग्रंथ साहिब के शब्दों में खोज ले।"

भठ वही भादसों परगना थानेसर में यह लिखा है :

"गुरु गोबिंद सिंह जी, महिल दसवां, बेटा गुरु तेग बहादुर जी का, पोता गुरु हर गोबिंद जी का, पड़पोता गुरु अर्जन जी का, वंश गुरु रामदास जी की, सूर्यबंशी, गोसल गोत्र, सोढी खत्री, वासी आनंदपुर, परगना कहिलूर, मकाम–नंदेर, तद गोदावरी, देश दक्खिन, सम्वत् सत्रह सौ पैंसठ, कार्तिक मास की चौथ, शुक्ल पक्ष, बुधवार के दिन, भाई दिया सिंह से वचन हुआ, श्री ग्रंथ साहिब ले आओ। वचन पाकर दया सिंह श्री ग्रंथ साहिब ले आये। गुरु जी ने पाँच पैसे, एक नारियल भेंट चढ़ाई, माथा टेका, सरबत संगत से कहा, मेरा हुक्म है, मेरी जगह श्री ग्रंथ साहिब को मानना, जो सिख इसे मानेगा, उसकी मेहनत फल पायेगी, गुरु उसकी पुकार सुनेगा, सतगुर को मानना।"

उस वक्त यह हुक्मनामा आया (मारू महल्ला 4, पृष्ठ 1000)

खुलिया करमु कृपा भई ठाकुर कीर्तनु हरि हरि गाई।
श्रमु थाका पाये बिश्रामा मिटि गई सगली धाई।
अब मोहि जीवन पदवी पाई।
चीति आइओ मनि पुरखु बिधाता संतन की सरणाई। 1 ।रहाउ।
कामु क्रोधु लोभ मोहु निवारे निवरे सगल बैराई।
सद हजूरि हाजरु है नाजरु कतहि न भइयो दूराई ।2।
सुख सीतल सरधा सभ पूरी होए संत सहाई।
पावन पतित कीए खिन भीतरि महिमा कथनु न जाई ।3।
निरभउ भये सगल भै खोए गोबिंद चरण ओटाई।
नानकु जसु गावै ठाकुर का रैणि दिनसु लिव लाई।

फिर गुरु जी ने अपना यह 'शबद' उच्चारा :[23]

"आज्ञा भई अकाल की तभी चलाइयो पंथ।
सभ सिखन को हुक्म है गुरु मान्यो ग्रंथ।
गुरु ग्रंथ जी मान्यो परगट गुरां की देह।
जो प्रभु को मिलबो चहै खोज शबद में लेह।"

गुरु जी ने अपने धर्म के बानी गुरु नानक देव जी से प्राप्त आध्यात्मिक परोपकारों के लिए कृतज्ञता प्रगट करते हुए फारसी में यह दोहा कहा :

"देग तेग फतहि बेदरंग याफत अज़ नानक गुरु गोबिंद सिंह।"

अर्थात : "गोबिंद सिंह को गुरु नानक जी से देग, तेग, फतह और फौरी सहायता की बख़्शीश हुई।"

(ये सतरें, गुरु जी के परम ज्योति में विलीन होने के बाद सिखों ने एक मोहर के ऊपर अंकित कर लीं और महाराजा रणजीत सिंह ने राज सम्भालने के बाद चलाये गये सिक्कों पर इनका प्रयोग किया।)

तब गुरु जी परम ज्योति में विलीन हो गये। सिखों ने जैसा कि गुरु जी आदेश दे गये थे, अन्तिम संस्कार की तैयारी की, कीर्तन सोहिला का पाठ हुआ और प्रसाद बांटा गया।

जब सभी सिख गुरु जी से बिछुड़ने का शोक मना रहे थे, एक गुरसिख आया और उसने कहा, "आप समझते हो कि गुरु जी की मृत्यु हो गई है। मैंने आज सवेरे लाखे रंग के घोड़े पर सवार गुरु जी के दर्शन किये हैं। मैंने शीश झुकाकर विनती की कि आप किधर जा रहे हैं तो गुरु जी मुस्कराये और उत्तर दिया कि वे जंगल में शिकार खेलने जा रहे हैं।"

जिन सिखों ने यह वार्ता सुनी, वे इस नतीजे पर पहुँचे कि यह सब गुरु जी का कौतुक था, वह निरंतर आत्मिक सुख में निवास कर रहे थे और जहाँ भी कोई उन्हें याद करता, दर्शन देते थे। जिसने भी

अपने हृदय में अकाल पुरुख के साथ प्यार का एक दाना मात्र खजाना भी रखा हुआ है, वह सौभाग्यशाली है और गुरु जी ऐसे श्रद्धालू को रहस्यमयी ढंग से दर्शन देते हैं, इसलिए ऐसे गुरु जी जो देह के कारण स्वर्ग पधार गये हैं, के लिए कोई शोक नहीं होना चाहिए।

सतगुरु जी अपने पुरातन गृह में 5 शुक्ल पक्ष कार्तिक, सम्वत् 1765 (7 अक्तूबर 1708 ई.) को लौट गये। उस समय उनकी आयु 42 वर्ष की थी।

इस संसार को त्यागने के समय गुरु जी ने हुक्म किया कि "जो कोई मेरे सत्कार की खातिर मंदिर बनायेगा, उसके सर्ववंश का नाश होगा।"

नंदेड़ में सिख मंदिर अबिचल नगर कहलाता है। यह महाराजा रणजीत सिंह ने गुरु जी की ओर से मनाही किये जाने के बाद भी सन् 1832 में बनाया गया था। सो, महाराजा रणजीत सिंह के बाद उसके शाही घराने के राज्य का अन्त हो गया। गुरु जी की भविष्यवाणी पूरी हुई।

1. एक दिन एक सिख आया और गुरु जी को अपनी सुपुत्री सुन्दरी से विवाह करने के लिए विनती की। गुरु जी रिश्ता करना नहीं चाहते थे, पर उनकी माता जी ने जबरन करवा दिया, पर यह माना जाता है कि सुन्दरी, जीतो जी का ही दूसरा नाम था। गुरु जी की दूसरी पत्नी नहीं थी। यह भी माना जाता है कि जीतो नाम उसके मायके की तरफ से रखा हुआ था और सुन्दरी नाम गुरु जी की तरफ से था। यह रीत समाज में आम थी।
2. रायपुर अम्बाला के निकट है। रायपुर के किले में उस स्थान पर गुरद्वारा बना हुआ है जहाँ गुरु जी ने रानी के मेहमान के तौर पर प्रसाद छका। किले से बाहर भी गुरद्वारा है जहाँ गुरु जी का तम्बू लगा था।
3. 52 कवि तो गुरु जी की पक्की नौकरी पर थे, पर यह संख्या एक समय बढ़कर 94 हो गयी थी।
4. कई कहते हैं कि तीसरी बार हिम्मत चंद आगे आया था और मोहकम चंद चौथा सिख था
5. असल में आनंदपुर में 1689 में पाँच किले बनाये गये थे। ये थे– अगंदगढ़, लौहगढ़, फतहगढ़, केशगढ़ और होलगढ़।
6. बचित्र सिंह बहुत बड़े शरीर वाला नहीं था और उसके बरछे का वजन लगभग 20 सेर था, जो आनंदपुर के आनंदगढ़ किले में अभी भी रखा हुआ है।
7. गुरु जी उस समय मालवे के सिखों की सेना के आने की आस कर रहे थे और इसी कारण वे सिखों को रुक जाने के लिए कह रहे थे। असल में, सेना पहुँची तो थी आनंदपुर की रक्षा करने के लिए, लेकिन बहुत देर से।
8. कई लेखक बताते हैं कि गुरु जी के पीछे आ रहे सिखों की संख्या 1500 थी।
9. यह भाई जैता जो गुरु तेग बहादुर जी का शीश दिल्ली से लाया था, का दूसरा नाम था, जिसे अमृत छकने के बाद रखा गया था।
10. यह जगह रोपड़ से दस मील की दूरी पर है।
11. कई लेखकों का मत है कि उस समय गढ़ी में बारह सिख पीछे रहे थे।
12. जिस स्थान पर गुरु जी ने ताली बजाई थी, वहाँ ताड़ी साहिब नाम का एक गुरद्वारा है। चमकौर साहिब में चार गुरद्वारे हैं। पहला, दमदमा साहिब, जहाँ गुरु जी ने गढ़ी में जाने से पहले आराम किया। दूसरा, गढ़ी साहिब, तीसरा– कतलगढ़ साहिब जहाँ साहिबजादों का संस्कार किया गया और चौथा ताड़ी साहिब।
13. यह मोर पंख इकट्ठे करके बनाई गई थी जो सम्मान के रूप में गुरु जी पर झुलाई जा रही थी।
14. 'उच का पीर' का अर्थ था कि उत्तर–पश्चिमी पंजाब के उच नामक नगर का मुसलमान दरवेश अर्थात फकीर।
15. यह भी कहा जाता है कि गुरु जी भाई मनी सिंह के बड़े भाई नगाहिया सिंह को मिले। वह और उसका पुत्र घोड़ों के व्यापारी थे और यह घोड़ा उन्होंने गुरु जी को भेंट किया था।
16. 'सूराज प्रकाश' में लिखा है कि महिराज के बाबा फूल के दो बेटों– तिलोक सिंह और राम सिंह जो उस समय सरहिंद में थे, ने इन दोनों का संस्कार किया।
17. गुरु नानक देव जी ने मुगल बादशाह बाबर को उसके वंश के लम्बे राज्य की बख्शीश दी थी। क्योंकि मुगल बादशाह अन्याय, झूठ, धोखा, जुल्म और अत्याचार करने लगे थे, उनके राज्य के अन्त की ज़रूरत थी। झाड़ी की जड़े उखाड़ते हुए गुरु जी असल में मुगल राज्य की जड़ें उखाड़ रहे थे, जिसका उसके बाद अन्त हो गया।
18. इस जुल्म के तीन वर्ष बाद बंदा सिंह बहादुर ने सरहिंद को बरबाद करके दुश्मन का पूरा नाश कर दिया।
19. 'ज़फ़र' का अर्थ है 'फतह'। यह बादशाह को फारसी कविता में लिखा गया पत्र था। यह फारसी बोली का शाहकार होने के कारण भी प्रसिद्ध है।
20. इस बीड़ की प्रतियाँ बाद में तैयार की गई थीं।
21. कोइर सिंह – गुरबिलास पातशाही 10 : "हरेक दिन गुरु जी सोने और चांदी की मुहरें बांटते थे जिसके कारण अनगिनत फौजी इस स्थान पर खिंचे चले आते थे।
22. कई लेखक कहते हैं कि बहादुर शाह ने कई लोग गुरु जी के पास भेजे।
23. ज्ञानी ज्ञान सिंह – श्री गुरु पंथ प्रकाश पष्ठ 1719